स्थिरकर हृदयमें अलग अलग पञ्चभूतकी धारणाको ही धारणा कहते हैं। हृदयमें हरितालवर्णा लकारयुक्ता ब्रह्ममयी चतुष्कोण भूमिकी चिन्ता करेंगे, इसे क्षिति-धारणा कहते हैं। अर्द्धचन्द्रसन्निभ, विष्णुदैवत, वकारसंयुक्त और कुन्द पुष्पकी तरह शुभ्र अम्बुतत्त्वका कण्ठदेशमें ध्यान करनेसे अम्बुजय किया जाता है। तालुस्थित इन्द्रगोप कीटविशेषकी तरह दृश्यमान रकारसंयुक्त रुद्रदैवत त्रिकोण तेजकी चिन्ता करनेसे वह्निविजित होते हैं। भ्रू द्वयके बीच गोलाकृति अञ्जनाभ यकार संयुक्त ईशदैवत तत्त्वका ध्यान करनेसे, वायुको जय करते हैं। ब्रह्मरन्ध्रमें सदाशिवसंयुक्त हकारबीजो शान्त आकाशतत्त्वकी चिन्ता करते हुए वहां पञ्चघटिका परिमित काल प्राणवायुको मनः संयोगसे निरोध करनेपर व्योमधारणा की जाती है ; यह मोक्षद्वारका कपाटस्वरूप विघ्नराशिके उत्पाटन करनेमें समर्थ होता है। पञ्चभूतको धारणा, यथाक्रमसे स्तम्भनी, प्लावनी, दहनी, भ्रामणी और शमनी इन पांच नामोंसे कथित हैं। यथार्थ विषयमें मनकी स्थिरताका नाम चिन्ता है, "ध्यै" धातुका अर्थ भी यही है, अतएव चिन्ता ही उक्त धातुसिद्ध ध्यान शब्दका अभिधेय है। वही चिन्ता सगुण निर्गुण भेदसे द्विविध है। वर्णभेदसे चिन्ता सगुण है, केवल चिन्ता निर्गुण और समन्त्रक चिन्ता सगुण और मन्त्ररहित चिन्ता निर्गुण कहकर विख्यात है। सुखावह आसनपर उपविष्ट हो मनको अन्तरमें और नेत्रको बाहर रखकर, शरीरके समतासम्पादनको अति सिद्धिप्रद ध्यानमुद्रा कहते हैं। स्थिरासन योगीके एक बार ध्यान करनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, राजसूय या अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी वह पुण्य नहीं लाभ होता। जबतक कर्णादिमें शब्दादितन्मात्रा रहे, तबतक ध्यानावस्था है। इसके उपरान्त समाधिदशा कहते हैं। पांच दण्डतक चित्तकी स्थिरताको धारणा षष्टिदण्डकाल चित्तकी स्थिरताको ध्यान और द्वादश दिन चित्तकी स्थिरताको समाधि कहते हैं। जैसे जलमें सैन्धव योग करनेसे एकाकार होता है, उसी तरह आत्मा और मनका एकीभाव समाधिके नामसे कथित है। जिस समय प्राण क्षीण होता है, चित्त विलीन होता है, उस समरसताको ही प्रख्डितगण समाधि कहते हैं। इस देहमें जीवात्मा परमात्माकी समता पानेसे, जबतक वासना तिरोहित हो, उसे समाधि दशा कहते हैं! समाधिस्थ योगीको आत्मीय या पराये, शीत या ग्रीष्म, कुछ भी अनुभव नहीं होता और काल उनकी सीमा नहीं करने पाता। कृतकर्म उन्हें आश्रय नहीं कर सकते, शस्त्र या अस्त्र उनकी देह भेद करनेमें समर्थ नहीं है। जो योगी मिताहारी हो विहार, निद्रा और जाग-

रण परिमितकर सब कार्य्यके साधन चेष्टाको परिमितभावसे करते हैं, वह सहज ही तत्त्वज्ञान लाभ करते हैं। जो हेतु और दृष्टान्तके अलक्ष्य, वाक्य और मनके अगोचर और विज्ञान या आनन्दस्वरूप ब्रह्म हैं; उन्हींको ब्रह्मज्ञानी तत्त्व कहा करते हैं। योगीके षड़ङ्ग योगाभ्याससे निर्दोष निरामय निरालम्ब परब्रह्ममें विलय होते हैं; जैसे घृत घृतमें निक्षेप होनेसे घृत ही रहता और क्षीरमें क्षीर मिलानेसे सभी क्षीरमय, उसी तरह योगी परमब्रह्ममें विलय होनेपर तन्मयता ही लाभ करते हैं। सदा अमसम्भूत घर्मजलसे शरीर मर्द्दन करेंगी और क्षीरभोजी हो कटु या उष्णद्रव्य और लवण भक्षण न करेंगी। जितेन्द्रिय रहकर ब्रह्मचर्य्यके अनुष्ठानमें क्रोध लोभ और मात्सर्य्य परिहारकर इसी तरह एक वर्षतक अभ्यास करनेपर योगी नामसे अभिहित होते हैं। जो महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालन्धर और मूलबन्ध परिज्ञात होते हैं; वह योगसे सिद्धि लाभ करते हैं। नाड़ीसमूहका शोधन, चन्द्रनाड़ी और सूर्य्यनाड़ीका मिलन और उत्तमरूपसे रससोषणको ही महामुद्रा कहते हैं। वामपद द्वारा जननेन्द्रिय पीड़न करते हुए वक्षःस्थलमें चिबुक रख दोनो हाथ द्वारा लम्बित दक्षिणाचरण धर प्राणवायुसे उदर पूर्णकर, फिर उसे रेचन करनेपर महामुद्रा किया जाता है, इससे महापातकराशि भी विनष्ट होती है। इस तरह प्राणायाम इड़ासे अभ्यस्त करनेपर, पिङ्गलासे अभ्यास करेंगी। जिस समय पुरकादिकी संख्या समान होगी, तब मुद्रा परित्याग करेंगी। इसके अभ्याससे योगीको पथ्यापथ्यके अविचारसे कोई क्षति नहीं। अपकारी सब रस उनकी देहमें निज शक्ति दिखा नहीं सकते, कठोर विषपान करनेपर भी अमृतकी तरह जीर्ण होता है। महामुद्राके अभ्याससे क्षय, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और अजीर्ण प्रभृति कठिन रोग विनष्ट होते हैं। कपालकुहरसे जिह्वाको विपरीतगामिनी रख भ्रूदयके बीच निश्चलदृष्टि स्थापनको खेचरी मुद्रा कहते हैं; जो उक्त मुद्रासे विशेष अवगत हैं, वह कर्म्मविपाक लिप्त नहीं होते और कभी रोग उन्हें अपने अधीन नहीं कर सकता। इसके अभ्यासके समय जिह्वा और मन खे अर्थात शून्यमें विचरण करता है, इसलिये ही उस मुद्राका नाम खेचरी है; सिद्धगणमें इसका यथेष्ट आदर है! जबतक देहमें बिन्दु स्थिरभावसे रहता है, तबतक मृत्युका भय नहीं रहता। इसलिये वह बिन्दुनिर्गमनिवारिणी खेचरीमुद्रा, अति प्रशंसनीया है। दिनरात महाप्राण उड्डीन करते हैं, इसलिये वक्ष्यमाण बन्धका नाम उड्डियान है; इससे दोनो हाथके अग्रभागसे जानुदय जठरमें और नाभिके

ऊर्द्धदेशमें क्रमिक अवस्थापित करेंगी। इसकी अभ्याससे मृत्युभय दूर होता है। जिससे अधोगामी जलादिकी कण्ठदेशमें शिरासमूह द्वारा रक्षा की जाती है, वह सब दुःखविनाशन जालन्धरबन्ध नामसे अभिहित है। कण्ठका सङ्कोचसूचक यह जालन्धरबन्ध अभ्यस्त होनेपर ललाटस्रुत अमृत और जठराग्निमें पतित नहीं होते और शरीरकी वायु भी चञ्चल नहीं होती। पार्ष्णि भागसे योनि सम्पीड़ितकर वायु सङ्कोचपूर्व्वक अपान वायुको ऊर्द्धमें आकर्षण करनेसे मूलबन्ध होता है; इससे प्राणके साथ अपान अभिन्न होनेपर, मूत्र-पुरीषका क्षय होता है; इससे वृद्ध भी अल्पकालमें युवाकी तरह शक्ति धारण करते हैं। जीव प्राण और अपान वायुके वशमें रहकर नियत चञ्चल हो वाम और दक्षिण मार्गसे ऊर्द्ध और अधोभागमें गमन करता है, क्षणकाल भी स्थिर नहीं रह सकता। जैसे रज्जुबद्ध पक्षी उड़नेपर भी फिर उसी जगह आकृष्ट होता है, उसी तरह सत्त्वादि गुणसे आबद्धजीव प्राणायाम-कालमें प्राण और अपान द्वारा आकृष्ट हो देहमें ही अवस्थित रहता है। अपान-वायु द्वारा प्राण आकृष्ट होता और प्राण-वायु अपानको आकर्षण करती है। यह वायुद्वय क्रमिक ऊर्द्धमें और अधोभागमें अवस्थित हैं; योगी ही इनके मिलानेमें समर्थ होते हैं। जीव हकारबीज द्वारा निर्गत हो फिर सकारबीजमें प्रवेश करता है, इसलिये सर्व्वदा ही "हंस" इस मन्त्रका जप करते रहें; जीव एक अहोरात्रमें षट्शताधिक एकविंशति सहस्र बार इस मन्त्रका जप करते हैं, इसे "अजपा" गायत्री कहकर निर्द्देश करते हैं। इसके सङ्कल्पमात्रसे ही मनुष्यमें पाप आश्रय नहीं करने पाता। योगियोंके लिये जो सब उपस्थित होनेसे योगकी हानि होती है, वह सब विघ्न कहता हूं। दूरगत बात सुनने या दूरस्थित पदार्थ देखने और निमिषार्द्धमें शतयोजन पथ चलनेकी क्षमता होती और अदृष्ट अश्रुत शास्त्रका मर्म्मार्थ सब सूक्ष्मरूपसे परिज्ञात होता है, अतिशय मेधाशक्ति और गुरुतर भार लघु बोध होता है। स्वयं कभी कृश, कभी स्थूल, क्षणमें महान्, क्षणमें अल्प होते और पराई देहमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं; पशुपक्षीकी भाषा समझ सकते हैं, देह दिव्यगन्धशाली होती है, दिव्यदेहधारी हो दिव्य बात कहते हुए दिव्यकन्याओंके प्रार्थ-नीय होते हैं; इस तरह विघ्नसमूह योगसिद्धिकी सूचना देते हैं। योगीका चित्त यदि इन सब विघ्नसे अभिभूत न हो, तो परकालमें उन्हें ब्रह्मादि देवगणका दुर्लभ परम पद लाभ होता है। जिसके पानेसे संसारमें फिर नहीं आना पड़ता या किसी लिये शोक नहीं करना पड़ता, हे कुम्भयोने! वह षड़ङ्ग योगसे लाभ

होता है। एक जन्ममें कैसे ऐसी योगसिद्धि होगी और योगसिद्धिके अतिरिक्त कैसे इस संसारमें निर्व्वाणपद मिलेगा? हे कुम्भयोने! इस तरहका योग या काशीमें देहत्याग, यह दो ही मुक्तिके उपाय हैं। इस कलिकालमें जीवका चित्त अतिशय चञ्चल और पापस्पर्शसे मलिन और आयु भी अति अल्पकाल होनेसे ऐसा योगाभ्यास दुर्घट है; इसीलिये दयामय विश्वेश्वर काशीक्षेत्रमें मुक्तिदाता होकर अवस्थान करते हैं। काशीमें जैसे अति सुखके साथ मुक्तिलाभ होता है, दूसरी जगह योगादि नाना उपायसे भी वैसे अल्पायाससे मुक्ति जीव नहीं पाता। काशीमें अवस्थान करना ही सम्पूर्ण योग कहकर निर्द्दिष्ट है; इस योगसे जितना शीघ्र मुक्ति होती है, वैसी और किसी उपायसे नहीं। काशीमें विश्वेश्वर, विशालाक्षी गङ्गा, कालभैरव, ढुण्ढिराज और दण्डपाणि यह छः योगके अङ्ग हैं। यहां इस षड़ङ्गयोगकी नियत सेवा करनेसे ही दीर्घ योगनिद्राके सहायसे मुक्तिपद लाभ होता है। यहां ओङ्कारनाथ कृत्तिवासाः, केदारेश्वर, त्रिपिष्टपेश्वर, वीरेश्वर और विश्वेश्वर, यह छः भी योगके दूसरे अङ्ग हैं। असि और वरणासङ्गम, ज्ञानवापी, मणिकर्णिका, ब्रह्मकुण्ड और धर्म्मकुण्ड, यह छः भी उसी योगके दूसरे अङ्ग हैं। हे नरवर! काशीमें इस षड़ङ्गकी सेवा करनेसे जीवको फिर जठरयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। काशीमें गङ्गामें अवगाहन ही महापापनाशिनी महामुद्रा हैं, इनके अभ्याससे मुक्तिलाभ होती है, काशीके पथमें विचरनेको खेचरीमुद्रा कहते हैं; इसके अभ्यस्ता निश्चय खेचर अर्थात् देवता होते हैं। इस देशसे उड़कर काशीमें आनेका ही नाम उड्डियानबन्ध है; यह अभ्यस्त होनेपर मुक्तिदान देता और विश्वेश्वरका स्नानसम्भूत देवदुर्लभ जल मस्तकमें धारण करनेसे जालन्धरबन्ध अनुष्ठित होता है। शतविघ्नसे व्याकुल होकर भी सुधीव्यक्ति काशीको परित्याग नहीं करते, इसीका नाम मूलबन्ध है; इससे सब दुःखका मूल विनष्ट होता है। हे मुने! महादेव कथित मुक्तिका उपायभूत द्विविधयोग तुमसे कहा। जबतक जीवकी इन्द्रिय विकल न हों, जबतक व्याधि आश्रय न करे और जबतक मृत्युमें विलम्ब हो, तबतक योगाभ्यास करेंगे। इन दोनो योगोंमें काशीयोग ही उत्तम है, इसके अभ्यास करनेसे परमयोग सहज ही प्राप्त होता है। मृत्युके चिह्नभूत आधिव्याधिसहायिनी जरा उपस्थित होनेपर मृत्युको निकट जान काशीश्वरका आश्रय करेंगे। काशीनाथके शरणागत होनेसे मानवका कालभय विदूरित होता है; कारण काल कुपित हो जीवन हरण करता है, वह भी का-

शीमें अति मङ्गलका विषय है। धार्म्मिक व्यक्ति अतिथिसत्कारके समय जैसे अतिथिकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी तरह भाग्यवान् व्यक्ति काशीमें मृत्युके आगमन प्रतीक्षित हो रहे हैं। कलि, काल और कृतकर्म्म, इन तीनको शुभका कण्टक कहकर निर्द्देश करते हैं; काशीवासीपर इनकी कोई प्रभुता नहीं है। दूसरी जगह काल अतर्कित-भावसे आकर स्वसामर्थ्य प्रकाश करता है; जिनको कालभय दूर करनेकी वासना है, वह सुकृति पुरुष, काशीका आश्रय करें।

एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥ ४१॥

द्विचत्वारिंश अध्याय।

कालवञ्चनोपाय।

अगस्त्यने कहा, किसतरह मृत्यु को निकटवर्त्ती जान सकते हैं, उसका क्या लक्षण है, वह मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, हे मुनिवर! जिन सब चिह्नको देखकर मृत्यु सन्निहित समझी जाती है, वह कहता हूं सुनो। जिसके केवल दक्षिण नासापुटसे दिनरात निश्वास प्रवाहित हो, वह दीर्घायु होनेपर भी तीन वर्षमें मर जावेंगे। दो या तीन दिन रात जिसका निश्वास दक्षिण नाड़ीसे चले, तबसे एक वर्षतक वह व्यक्ति जीवित रहता है। जिसके दोनो नासापुटसे निरन्तर दस दिन निश्वास प्रवाहित हो और बीच बीचमें मिल जाय, उसके जीवनका समय तीन दिन है। श्वासवायु नासापुटसे न नकलकर जिसके मुखसे प्रवाहित हो, वह दो दिनके भीतर ही मर जायगा। जिस समय अकस्मात मृत्यु होती है, मृत्युभीत व्यक्ति उस समयकी चिन्ता पहलेहीसे करेंगे। जब सूर्य्य सप्तम राशि और चन्द्रमा जन्मनक्षत्रका आश्रय करते हैं तब दक्षिण नासासे जो निश्वास बहता है; इस सूर्य्याधिष्ठित कालके ऊपर विशेष लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। उस दिनसे यत्कर्त्तृक अकस्मात कृष्ण और पिङ्गलवर्ण पुरुष दिखाई देते हैं और इसके बाद ही उस पुरुषका रूपान्तर लक्षित होते हैं, वह मात्र दो वर्ष बचते हैं। जिनके दृष्टिपथसे आकाशमें विचरणकारी मरकताभ राज-राजि निपतित हो, वह छः महीनेमें ही मर जाते हैं और जो मुंहमें जल लेकर सूर्य्याभिमुख न होकर आका-शकी ओर फुत्कार करें और उससे इन्द्र-धनु न दिखाई दे, वह भी उतने ही दिन जीवित रहते हैं। जो व्यक्ति अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुपद और मातृमण्डल न देख पावें, उनकी मृत्यु निकट जानेंगे। जिह्वाको अरुन्धती, नासिकाके अगले-भागको ध्रुव, भ्रूमध्यको विष्णुपद और नेत्र-द्वयके मध्यभागको मातृमण्डल कहते हैं। जिन्हें नीलादिवर्णका और कटु अम्ल प्रभृति रस सबके याथार्थ्य दूसरी तरह जान पड़े,

तो छः महीनेमें ही मृत्यु आकर उन्हें ग्रास करती है। जिनकी छः महीनेमात्र आयुका समय अवशिष्ट है, उनका कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा, दन्त और तालु सदा शुष्क होता है और जिनका शुक्र, हाथकी उंगली और कानका कोण नीलाभ हो, छः महीनेमें ही वह यमालयमें उपगत होते हैं। मैथुनकालमें या उसके बाद जिन्हें हांची होती है, वह पांच महीनेतक जीवित रहते हैं। नानावर्णोंके कृकलास जिनके मस्तकपर अतर्कित भावसे आकर चले जायं, वह छः महीनेमें मर जाते हैं। जिनके स्नानके बाद ही वक्षःस्थल, पदयुगल और दोनो हाथ सूख जाते हैं, वह तीन महीनेसे अधिक नहीं बचते। धूलि या कीचड़में जिनका पदचिह्न खण्डितभावसे लक्षित हो, उनका आयुःकाल पांच महीनेतक है। देह चञ्चल न होनेपर भी जिनकी छाया चञ्चल होती है, चार महीनेके भीतर वह यमदूतके बन्धनमें पतित होते हैं। जिन व्यक्तियोंको स्वच्छ दर्पणादिमें निज प्रतिबिम्बमें मस्तक न दिखाई दे, वह महीनेमें ही मृत्युमुखमें निपतित होते हैं। बुद्धिभ्रंश, वाक्यका स्खलन, आकाशमें दृष्टिक्षेप करनेसे ही इन्द्रधनु दर्शन, रातमें दो चन्द्र, दिनमें दो सूर्य्य या नक्षत्र और रातमें नक्षत्रहीन आकाश एक समयमें चतुर्दिक इन्द्रधनु और वृक्षके ऊपर या पर्व्वत शिखरपर गन्धर्व्वनगर और दिनमें पिशाचोंका नाच, यह सब देखनेसे शीघ्र मृत्यु होती है। इनमेंसे यदि एक चिह्न भी लक्षित हो, तो महीनेके भीतर ही जमालयको जाते हैं। जिनको उंगली द्वारा कर्ण रुद्ध करनेपर किसी तरहका शब्द न सुनाई दे और जो स्थूल होकर भी हठात् कृश या कृश रहकर सहसा स्थूल हों, वह एक महीनेके भीतर मृत्युवशसे उपनीत होते हैं। जो व्यक्ति स्वप्नमें पिशाच, असुर, काक, भूत, प्रेत, कुक्कुर, गृध्र, शृगाल, शूकर, खर, गर्दभ, उष्ट्र, वानर, श्येन पक्षी, अश्वतर या वकके पृष्ठपर आरूढ़ हो उनके भक्ष्य हों, वह एक वर्षके बाद ही जमालय उपगत होते हैं। जो निज पाटलवर्णा देह, गन्ध पुष्प या वस्त्र द्वारा भूषित होते दिखाई दें, उनका आयुःकाल अष्टमास मात्र अवशिष्ट है। स्वप्नमें जो धूलिराशिमें वल्मीकराशिमें या यूपदण्डमें आरूढ़ हुए हों; उनका जीवन छः महीनेसे अधिक नहीं रहता। जो अपनेको स्वप्नमें गर्द्दभपर चढ़ना, तैलमर्द्दन करना, मुण्डित हो यमालय जाते देखें और अपने मृत पूर्व्वपुरुषोंको और मस्तक या देहमें तृण या काष्ठराशि अवलोकन करें, वह छः महीनेसे अधिक नहीं बचते। जिनके सामने कृष्णवर्ण पुरुष कृष्ण-वसन परिधान-कर लौहदण्ड धारणकर उपस्थित हों, उनकी मृत्यु तीन महीनेमें होती है। जिन्हें स्वप्नमें कृष्णवर्णाकुमारी आलिङ्गन

करें, वह एक महीनेके भीतर यमालयमें जाते हैं। जो स्वप्नमें बानरपर आरूढ़ हो पूर्व्व ओर जावें, वह पांच दिनके भीतर मृत्युमुखमें निपतित होते हैं। कृपण व्यक्ति भी अकस्मात दाता होनेसे अथवा दाताके हठात् कृपण होनेसे, या और किसी तरह सहसा स्वभाव विकृत होनेसे, शीघ्र मरते हैं। यह सब और अन्यान्य बहुतर काल-चिह्न परिज्ञात हो योगाभ्यास या काशीका आश्रय लेंगी। हे मुने! जठर यातनानि-वारक मृत्युञ्जय काशीनाथके सिवा कालको छलनेके लिये और कोई उपाय है या नहीं यह मैं नहीं जानता। मानव जबतक विश्वेश्वरके शरणागत न हों, तबतक उनके लिये पापराशि और दण्डधर गर्ज्जन करते हैं। काशीमें वास, वहां गङ्गाजल पान और विश्वेश्वर लिङ्ग स्पर्श करनेसे, जीव किसकी पूजा प्राप्त नहीं करता? जिस काशीमें मरणकालमें स्वयं शिव जीवके कर्णमें मन्त्रोपदेश करते हैं, वहां उस जीवके ऊपर कालकी कोई प्रभुता ही नहीं रहती। बाल्य और कौमारदशा जैसे अल्प-दिनमें ही अतिवाहित होती है, उसी तरह यौवन और वार्द्धक्य भी अल्पदिनमें ही चला जाता है; इसलिये जबतक जरा आकर इन्द्रियगणको विकल न करे, उसके भीतर ही पण्डित व्यक्ति तुच्छ विषयसुख परिहारकर काशीवासी होंगे। हे अगस्त्य! अन्यान्य मृत्युचिह्नकी बात दूर रहो, जरा ही मृत्युका प्रथम चिह्न है; वही जरा किसीका भी भयहेतु नहीं होता, यह बड़े आश्चर्य्यका विषय है। जरा जिसपर आक्रमण करता है, सबके निकट दरिद्रकी तरह उसका पराभव है और उसके पुत्र आदि भी अवहेला करते हैं, पत्नी प्रेमपर्य्यन्त परित्याग करती है, बन्धुगण उनका आदर नहीं करते। जराग्रस्त व्यक्तिको देखकर प्रणयिणी प्रमदा भी परस्त्रीकी तरह शङ्किता हो स्थानान्तरमें चली जाती हैं। जरा जैसी पीड़ा या दुःख और नहीं है। मानवगण जरासे अपमानित होते हैं और जरा द्वारा ही वह मृत्यु ग्रासमें चालित होते हैं। काशीवाससे अल्पकालमें जैसे कालको दूर किया जाता है, तपस्या या योगाभ्याससे उतने अल्प समयमें कालजय नहीं होता! यद्यपि यज्ञ, दान, व्रत और तपश्चर्य्याजनित पुण्य-सञ्चयके सिवा कोई काशीलाभ नहीं कर सकता। काशीप्राप्ति ही योग, काशीप्राप्ति ही तप, काशीप्राप्ति ही दान और काशी-प्राप्ति ही शिवैकता है। काशीका यदि आश्रयकर पावें, तो उनके सन्निधानमें कलि ही क्या है, काल ही क्या है, जरा ही क्या है, दुष्कृत ही क्या है?—सभी तुच्छ हैं; कोई अग्रसर नहीं हो सकते! यत्कर्त्तृक काशी आश्रिता नहीं, तो कलि उन्हींका क्लेशप्रदायक है; कालग्रासमें वही व्यक्ति निपतित होते हैं, पापराशि उनको ही कष्ट

देती है। जो काशी आश्रयकर विश्वेश्वरकी आराधना करते हैं, उन्हें अन्तकालमें ब्रह्मज्ञान लाभ और उससे कर्म्मसूत्र छेदन होता है! काशीमें मरनेसे जो अक्षय सुखलाभ होता है, धनी मानव इस संसारमें कभी वैसे सुखी नहीं हो सकते। काशीमें जो व्यक्ति यथाविधि अवस्थान करते हैं, वह स्वर्गपदपर समासीन व्यक्तिकी अपेक्षा अधिकतर श्रेष्ठ हैं; कारण काशीवासीका दुःख अवसान होता है और स्वर्गवासीको सुखका ही अवसान लाभ होता है। हम, राजा दिवोदास प्रतिपालिता, काशीके सिवा भगवान विश्वेश्वरको सुन्दर मन्दर गुहामें बैठे रहने पर भी वैसा प्रीतिलाभ नहीं होता।

द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश अध्याय।

दिवोदास नृपतिका प्रतापवर्णन।

अगस्त्यने कहा, हे कार्त्तिकेय! भगवान् काशीनाथ कर्त्तृक किसतरह राजा दिवोदास काशीसे दूरित हुए थे और किस उपायसे फिर मन्दराचलसे काशीमें आये थे, वह वर्णन करिये। स्कन्दने कहा, आदिदेव महादेव, ब्रह्मवाक्य लङ्घन न कर और मन्दर पर्व्वतकी तपस्यासे सन्तोष लाभकर, काशीधामको शून्य करते हुए मन्दर पर्व्वतपर गये। सब देवगण भी उनके अनुगामी हुए। तब नारायण भी सब वैष्णवक्षेत्र परिहारकर पार्व्वतीनाथके अधिष्ठित मन्दराचलमें उपस्थित हुए। गणपति और सूर्य्यदेव भी अपना अपना स्थान परित्यागकर वहां गये और अन्यान्य देवगण भी मर्त्त्यमें अपना अपना धाम शून्यकर उस मन्दरपर्व्वतपर जाने लगे। इसतरह देवताओंके पृथिवी परित्याग करनेपर, प्रतापशाली सार्व्वभौम दिवोदास, निर्व्विघ्नसे राज्य करने लगे। वहां काशीमें नगरी निर्म्माणकर प्रजागणको पुत्रनिर्व्विशेषसे पालन करते हुए, दिन दिन वर्द्धित होने लगे। वह दुष्टोंके हृदय और नेत्रमें सूर्य्य जैसे तेजस्वी और तीक्ष्णदण्ड थे और सुहृद या आत्मीयगणके नयनमें और हृदयमें सौम्यमूर्त्ति हो प्रीतिसम्पादन करते थे। राजा दिवोदास इन्द्रधनुकी तरह धनुका टङ्कारकर रणस्थलमें भागती हुई शत्रुसेनारूप मेघवृन्द द्वारा बारंबार लक्षित होते और सज्जनके सत्कारक और दुष्टके दण्डकारी धर्म्माधर्म्मविवेचक उन राजाको लोग धर्म्मराजकी तरह समझते थे। उन्होंने अर्ज्जुनकी तरह कई बार अरिकुलरूप अरण्यसमूह दग्ध किया था और वरुणकी तरह दूरस्थ होकर भी शत्रुगणका बन्धन किया था। रिपुरूप राक्षसके छेदक और पुण्यकर्म्माओंके श्रेष्ठ वह राजा जगत्प्राणनतत्पर हो जगत्प्राण (वायु) की तरह थे और सब साधुगण उनसे अनुकम्-

रत्नादि पाकर उन्हें कुवेर समझते थे संग्रामस्थलमें शत्रुगण उनकी उग्रमूर्त्ति सह नहीं सकते थे। वह तपोबलसे समस्त देवगणके स्पप्रधारणमें समर्थ थे, इसलिये देवता उनका स्तव और भजन करते थे। धनसामर्थ्यसे वसुगणसे भी अधिकतर उन राजाकी महिमा देवगणके निकट भी दुर्विज्ञेय थी। अश्विनीकुमारसे भी समधिक रूपवान् उन राजाके ग्रहगण विरुद्ध हो अनिष्टकारी होनेपर, वह युद्धकर उन्हें दूर करते थे। विद्याधरगणसे भितर भी अधिक विद्याधर हो महत्‌गणकी उपेक्षाकर तृषित लोगोंको निज-गुणसे परितुष्ट करते थे। गीतविद्यामें गन्धर्वगणके भी गर्व्वखर्व्वकारी इन राजाका स्वर्गोपम दुर्गको यक्ष और राक्षसगण नियत रक्षा करते थे। नागगण उनका सामर्थ्य सन्दर्शनकर कभी उनका अनिष्ट करनेके साहसी नहीं होते थे। दैत्य लोग भी उनकी सेवा करते और गुह्यकगण उन्हें सदा वेष्टन करके रहते। "आपने राज्यसे देवताओंको दूर किया है; इस कारण हमलोग अपने अपने विभवानुसार आपकी सेवा करेंगे," ऐसा कहकर असुरगण उनका स्तव करते थे। वायु, अश्वगति शिक्षा-शास्त्रमें शिक्षकपदपर अवस्थित हो, इन राजाके अश्वगणकी शीघ्रगतिकी शिक्षा देते थे। इन राजाका पर्व्वतदेहवत् विपुलदेहसम्पन्न पार्व्वत-गजराजिको अजस्र दान (मद जल) सम्पन्न देख दूसरे भी दानसम्पन्न (दाता) हुए थे। सभाप्राङ्गणमें उनके पण्डित-लोग शास्त्रमें और रणाङ्गणमें उनके योद्धालोग अस्त्रसे, कभी किसीसे पराजित नहीं हुए उनके राज्यमें देषगणको किसीने पदस्थ नहीं देखा और उनके प्रजापुञ्जको अपदस्थ नहीं देखा। स्वर्गमें देवताओंके बीच एक कलानिधि हैं; किन्तु इनके समयमें भूर्लोक सभी कलाका (नृत्यगीतादिका) निधि (आकर) था। स्वर्गलोकमें एक कामदेव है, वह भी अनङ्ग; किन्तु इनके राज्यमें समस्त लोग अङ्ग-उपाङ्गके सहित विराजते थे। उनके राज्यमें कोई गोत्रभित्, (कुलनाशक) है ऐसा नहीं सुनाई देता था; किन्तु स्वर्गमें स्वयं देवराज ही गोत्रभित् नामसे अभिहित हैं। स्वर्गमें चन्द्रमा प्रति कृष्णपक्षमें क्षयको प्राप्त होते हैं, किन्तु उनकी प्रजामें कोई क्षयी नहीं था। स्वर्लोक, नवग्रहकी वासभूमि है: किन्तु उनके समयमें मर्त्त्यमें कोई ग्रह नहीं था। स्वर्गमें मात्र एक हिरण्यगर्भ रहते हैं, किन्तु उनके समस्त पुरजनका भवन हिरण्यगर्भ (सुवर्णपूर्ण) था। स्वर्गमें एक अंशुमान हैं, वह भी अप्राम्ब, किन्तु उनके नगरवासी सभी सदंशुक वस्त्रप्रब थे। इन राजाकी नगरी भी स्वर्गकी तरह अप्सरा समूहसे सुशोभिता थी। वैकुण्ठ मात्र एक

पद्माकी आवासभूमि है, किन्तु उनके राज्यमें बहुत पद्माकर थे। उन राजाके सब साम्राज्यमें ही ईति (अनावृष्टि प्रभृति) का भय लोग नहीं जानते थे, सब ग्रामकी राजपुरुषलोग रक्षा करते थे। स्वर्गमें एक अलकानाथ ही धनद नामसे विख्यात हैं, किन्तु उनके समय घर घरमें धनदगण शोभा पाते थे। राजादिवोदासने इसतरह राज्य करते हुए आठ अयुत वर्ष एक दिनकी तरह अनायास अतिवाहित किये। इसी समयमें देवतालोग धर्म्मानुसार प्रजापालक इन राजाका अपकार करणाभिप्रायसे वृहस्पतिके साथ मन्त्रणा करने लगे। हे मुनिवर! भवादृश धार्म्मिक व्यक्तिको ही देवगण बहुतर विपद्में निक्षेप करते हैं। इन भूमिपति दिवोदासने कितने शत दुष्कर यज्ञके अनुष्ठानसे यज्ञभुक् देवगणका सन्तोष किया था, तथाच वहलोग इनके विपक्ष होते हैं। अथवा देवगणका ऐसा स्वभाव है, कि वह पराधिका उत्कर्ष सह्य नहीं कर सकते। नहीं तो बलि, बाण और दधीचि प्रभृति अनपराधी होकर भी क्यों उनके निग्रहभाजन हुए? धर्म्मानुष्टानमें बहुतर विघ्न पाकर भी धार्म्मिकगण कभी धर्म्मच्युत नहीं होते। अधार्म्मिक व्यक्ति पहले धनधान्यसम्पन्न हो वृद्धि पाते और अधर्म्मप्रभावसे अन्तकालमें समूलसे विनष्ट हो अधोगमन करते हैं। राजादिवोदास अपत्यनिर्व्विशेषसे प्रजापालक थे इसलिये अधर्म्मका कणामात्र भी उनका आश्रय नहीं हुआ। देवतालोगोंने, षाड़्गुण्यवेत्ता शक्तित्रयशाली धर्म्मादिचतुर्व्वर्गके सदुपायवेत्ता उन राजाका कोई छिद्र न पाया। अपचिकीर्षु देवगणके हृदयमें उन राजाका अपकार करनेमें किसी तरहकी शङ्का न हुई। इन राजाके अधीनस्थ यावत् पुरुषको धर्म्माचरणमें वासना और एक सहधर्म्मिणी थी। वहांकी स्त्रीमात्र सती थीं; उनके राज्यमें सब ब्राह्मण पण्डित, क्षत्रिय बलशाली, वैश्यगण अर्थोपार्ज्जनके उपायाभिज्ञ और शूद्रगण अन्यवृत्ति परिहारपूर्व्वक द्विजशुश्रुषामें आसक्त थे। उनके समयमें ब्रह्मचारिगण अस्खलित ब्रह्मचर्य्य हो, गुरुके अधीन रहकर वेदपाठ करते थे। गृहस्थगण आतिथ्यधर्म्माभिज्ञ, सर्व्वशास्त्रपारदर्शी और सत्कर्म्मानुष्ठायी थे। उनके राज्यमें वाणप्रस्थीलोग वनवासी हो ग्रामवार्त्तासमूहमें स्पृहाहीन रहकर वेदोदित पथका अनुसरण करते और यतिलोग सङ्ग और स्त्रीपरिहारपूर्व्वक वाक्य मन और शरीरका प्रभुत्व पा निस्पृह होकर रहते थे। इसतरह दूसरे अनुलोमजात व्यक्ति भी परम्परागत अपना अपना कुलमार्ग अतिक्रम नहीं करते थे। उनके राज्यमें कोई षण्ढक या दरिद्र नहीं था, सभी वृद्धकी सेवा करते और कालमें मृत्युके अधीन होते थे। इनके राज्यमें कोई चञ्चलस्वभाव, वाचाल,

हिंसक, वञ्चक, पाषण्ड, भण्ड, रण्ड या शौण्डिक नहीं थे। राज्यके सब स्थानमें ही वेदध्वनि, शास्त्रालाप, सदालाप, मङ्गल-गीति और सतत वीणा वेणु मृदङ्ग प्रभृति बाजेकी सुमधुर ध्वनि श्रुतिगोचर होती थी। इनके राज्यमें यज्ञमें ही सोमपान होता, और कहीं पानसभा नहीं थी और पुरोडाशयज्ञके सिवा और किसी समयमें कोई भी मांस भक्षण नहीं करता था। इस राज्यमें कोई द्युतशील, अधर्म्म या तस्कर नहीं था। सभी पितृपदसेवा, देवार्च्चना, उपवास, व्रत और तीर्थसेवा अपना कर्त्तव्य समझते थे। स्त्रीगण स्वामिसेवा और स्वामिवाक्य पालनके सिवा और कर्म्म नहीं जानती थीं। मानवगण अपने अग्रजकी सेवा करते थे। भृत्यगण द्वारा प्रभु सर्व्वदा सेवित होते थे। हीन-जाति व्यक्ति उत्कृष्टजातीय पुरुषका गुण-गौरव सदा ही वर्णन करते थे। काशी और काशीस्थ देवगण सबसे पूजा पाते थे। पण्डितलोग सबके निकट भक्तिसहित सम्मान पाते थे। पण्डितगण द्वारा तप-स्विगण, तपस्विगण द्वारा जितेन्द्रियगण, जितेन्द्रियगण द्वारा ज्ञानिगण और ज्ञानि-गण द्वारा शिवभक्तगण नियत पूजित होते थे। उनके राज्यमें धनवान् मात्र होने वापी, कूप, तड़ाग और उपवनसमूहकी प्रतिष्ठा की थी और समस्तजाति ही हृष्टपुष्ट थी। व्याध और पशुघातीके सिवा सभी प्रशंसनीय कार्य्य करते थे। इस-लिये देवगणने बहुतर अनुसन्धान करके भी अशेषगुणाधार पुण्यकर्म्मा उन राजाका अपकार करनेका कोई छिद्र नहीं पाया। फिर देवगुरु वृहस्पति, देवगणको इन धर्म्मिष्ठ वरिष्ठ और मन्त्रवित् राजाका अप-चिकीर्षु देख उस विषयमें कहने लगे। वृहस्पतिने कहा, वह राजा मन्त्र, विग्रह, प्रयाण, अवस्थान, संशय और भेद विषयके जैसे ज्ञाता हैं, ऐसा और कोई नहीं है। सामादि उपायचतुष्टयमें मैं एकमात्र भेदको ही उपाय देखता हूं; किन्तु तपोबल-शाली उन राजामें वह भी कार्य्यसिद्धिकर होगा या नहीं, यह नहीं जानता। यद्यपि समस्त देवगण ही इन राजा द्वारा पृथ्वीसे निर्व्वासित हुए हैं, तथापि वहां देवपक्षीय अनेक ही इस समय भी अवस्थान करते हैं। जिन लोगोंका एक निमिषकाल अभाव होनेसे, उन नृपतिको और हमलोगोंकी कष्टकी अवधि नहीं है, वह जीवगणके अन्तश्चर और वहिश्चर हो वहां परम सम्मानसे अवस्थान करते हैं। उन लोगोंके उनका राज्य परित्याग करनेपर ही तुम्हारा अभीष्ट परिपूर्ण हो सकता है। देवगणने वृहस्पतिकी यह सब बात सुनकर उनके सदर्थसे ज्ञात होकर, उनको वन्द-नाकर कहा, "ऐसा ही करना होगा।" तब देवराजने समीपस्थित अग्निको बुला-कर मधुरभावसे कहा, हे हव्यवाहन! आप

मर्त्त्यभूमिमें जिस मूर्त्तिसे अवस्थित हैं, वह मूर्त्ति, शीघ्र दिवोदासके राज्यसे अपसारित कीजिये। आपकी मूर्त्ति पृथ्वीसे स्थानान्तरित होनेपर, प्रजागणका अन्नप्रभाव निबन्धन हव्यकव्यक्रिया बिलुप्त होगी; इससे वह लोग राजाके प्रति बिरक्त होंगे। राजा प्रजागणका विरागभाजन होनेपर, उनका बहुत श्रमसे अर्ज्जित राजशब्द निरर्थक होगा; प्रजारञ्जक होनेसे लोग भूपालको 'राजा' कहते हैं, किन्तु उनका प्रजारञ्जन विनाश होनेपर, राजशब्द और राज्य ध्वंस होगा। विरक्त प्रजागण द्वारा परित्यक्त राजाका कोष, दुर्ग और बल-सम्पत्ति रहनेपर भी नदी किनारेके वृक्षकी तरह शीघ्र विनाश होता है। प्रजा ही राजाके त्रिवर्गसाधनके प्रधान सहाय है; वह प्रजा क्षीण होनेपर राजाका धर्म्म, अर्थ, काम, यह त्रिवर्ग भी क्षीण होता है। राजाके त्रिवर्गक्षय होनेपर इहलोकमें और परलोकमें कष्टकी सीमा नहीं रहती। अग्निदेवने इन्द्रकी ऐसी बात सुनकर शीघ्र ही पृथिवीसे योगमाहात्म्यसे स्वदेह अन्तर्हित की। उन्होंने इन्द्रवाक्यसे आहवनीय हो, गार्हपत्य और दक्षिणरूप निज मूर्त्तित्रय मात्र संहारकर अपनी दाहिका शक्तिके सहित जठराग्निको भी आकृष्ट किया। इसतरह अग्निके भूर्लोक परित्याग करनेपर, मध्याह्न समयमें दिवोदास राजाने तात्कालिक उपासना समापनकर भोजन गृहमें प्रवेश करते ही देखा, पाचक लोग बार बार कांपते हैं और उन्हें क्षुधित जानकर भी निवेदन करनेमें कुण्ठित नहीं होते। पाचकगणने कहा,—हे सूर्य्याधिकतेजस्विन्! तेजोजितानल! रणपण्डित! हे नृपति! यदि हमलोगोंको आपसे कोई भय न रहे, तो कहनेका यह समय न होनेपर भी हमलोग नतभावसे निवेदन करते हैं। कार्त्तिकने कहा, फिर सौम्यमूर्त्ति राजाके कटाक्षक्षेपसे वह कहनेमें आदिष्ट हो कहने लगी, हे महाराज! आपका दुःसह प्रताप सह्य करनेमें अपारग हो या और किसी तरहसे भवदीय महिमानभिज्ञ हो अग्निदेव पाकशालादि शून्यकर कहां चले गये, वह हमलोग नहीं जानते। अग्निके अभावसे किसी तरह भी पाककार्य्य नहीं हो सकता, तथापि हमलोगोंने सूर्य्यतेजसे कुछ वस्तु पाक की है; आपकी आज्ञा पाते ही उसे ले आवेंगे और विवेचना होती है, कि वह पाक उत्तम ही हुआ है। असीम बलशाली धीमान् राजाने पाचकगणकी ऐसी बात सुन विवेचना की, कि यह निःसन्देह देवताओंका काम है। फिर क्षणकाल स्थिर हो चिन्ता करके देखा, कि अग्निने केवल उनकी पाकशाला और जठरगुहा ही परित्याग नहीं किया है, वरञ्च समस्त पृथिवी परित्यागकर स्वर्लोक गमन किया है। तब उन्होंने

विचार किया, कि अग्नि गये हैं, उत्तम है, इससे मेरा कुछ अपकार नहीं ; मैं अग्निके सहायसे राजेश्वर नहीं हुआ हूं; ब्रह्मासे ही गौरवके सहित मैंने राज्य पाया है। प्रत्युत सूक्ष्मभावसे देखनेपर इसमें देवगणोंकी ही हानि होगी। ऐसे समय जनपदवासियोंके सहित पुरवासिगण आकर उपस्थित हुए, द्वारपाल राजाज्ञासे उनलोगोंको पुरके भीतर ले चला। पुरवासिगणने राजसन्निधानमें अपने अपने विभवानुरूप भेंट रख उनका यथोचित अभिवादन किया। राजाने किसीको मधुरवाक्यसे, किसीके प्रति सानन्द दृष्टि सञ्चालनसे, किसीको हस्तपीड़न द्वारा समादृत किया। फिर उन लोगोंके राजादेशसे महार्ह आसनपर उपविष्ट होनेपर राजाने उन लोगोंके मुखकी आकृति देखकर मनोभिप्राय अवगत हो कहा,—हे पुरवासी प्रजागण! तुम लोग भय न करना ; यद्यपि देवगणने मेरे अपचिकीर्षु हो अग्निको स्थानान्तरित किया है, तथापि मेरा इससे कुछ भी पराभव नहीं हुआ। हे प्रकृतिपुञ्ज! मैं इस सम्बन्धमें पहले ही कुछ करनेका अभिलाषी होकर भी उपेक्षा ही करता था। आज बहुत दिनोंके बाद देवताओंने मुझे स्मरण करा दिया। अनलने प्रस्थान किया है, अच्छा ही हुआ। वायु भी यह स्थान परित्याग करें ; वरुण, चन्द्र और सूर्य्य साथ ही सत्वर अन्तर्हित हों ; मैं तपस्या बलसे जनपदवासियोंका आनन्दवर्द्धक शस्यसमूह उत्पादनकर इन्द्रकार्य्य सम्पादन करूंगा। मैं ही तपस्या और योगके साहाय्यसे अपनेको वह्निरूपसे त्रिधा विभक्तकर पाक, यज्ञ और दाहकार्य्य सम्पादन करूंगा। मैं अन्तर्व्वहिश्वर वायुरूपी हो जीवकी जीवनरक्षा करूंगा। और अन्तर्व्वृत्ति प्राप्त हूंगा और मैं ही जीवकी जीवनरक्षिणी जलमयी मूर्त्ति धारणकर प्रजाकी जीवनरक्षा करूंगा। यह सब पदार्थ मेरे राज्यसे दूर हो। जिस समय सूर्य्य या चन्द्रको राहु आकर ग्रास करते हैं, तब उन लोगोंके अभावसे भी हमलोग जीवन धारण करते हैं। क्षयी और कलङ्की चन्द्रमा मेरे राज्यसे प्रस्थान करें, मैं ही चन्द्ररूप धारणकर प्रजाका आनन्दवर्द्धन करूंगा। सूर्य्यदेव मेरे वंशके आदिपुरुष कहकर माननीय हैं, केवल वह रहें और सुखसे गमनागमन करें ; इसलिये, कि वह एकमात्र जगत्के प्राणभूत और विशेष मेरे कुलदेवता हैं। वह जगत्के अनपकारी हैं, यही उनका एकमात्र व्रत है। पौरप्रजागण श्रुतिपुट द्वारा ऐसा राजाका वाक्यामृत पानकर आनन्द हृदयसे प्रसन्नमुखसे राजाका अभिवादनकर अपने अपने घर गये, राजा दिवोदासने भी तपोबलसे इन सब देवताओंका रूप धारणकर उनकी अपेक्षा अधिकतर तेजस्वी हो

देवताओंका मर्मस्थान शत शत शल्य द्वारा विद्ध करने लगी। अहो! त्रिभुवनमें तपस्याके सिद्ध न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है।

त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंश अध्याय।

शिवका काशीविरह-सन्ताप और योगिनी-प्रयाण।

कार्त्तिकेयने कहा,—महादेव मन्दराचलमें जिस मन्दिरमें अवस्थित हुए, उसका अति समुच्च चूड़ा सब असामान्य कान्तिशाली रत्नराजिद्वारा सुशोभित था। इस जगह शशिशेखर निरन्तर देवगणसे वेष्टित रहकर भी एकमात्र काशीविरहसे सर्व्वदा ही व्याकुल होने लगे; किसी तरह शान्ति लाभ नहीं कर सके। उन्होंने असह्य सन्ताप दूर करनेके लिये शरीरमें पङ्कीभूत चन्दन लेपन किया, वह भी क्षणमें शुष्क होने लगा और अति शीतल कोमल मृणालदल हाथोंमें कङ्कणकी तरह धारण किया, किन्तु उससे अपनी विरहवह्नि द्विगुणतर हुई देख उन्होंने दुःखसे कहा, "यह मृणाल नहीं, सर्प है।" वस्तुतः ईश्वरका वाक्य मिथ्या होनेका नहीं, इसलिये वह सर्परूपी हो आजतक उनके हाथोंमें विराज रहा है। क्षीरसागरमन्थनमें सुरगणने अतिकोमल शीतल और षोड़श कलासे पूर्ण जिन चन्द्रमाको पाया था, काशीवियोगव्याकुल आदिदेवका सन्ताप दूरीकरणाभिलाषसे मस्तकके ऊपर दिवामात्र वह पूर्णचन्द्र तीव्र सन्तापसे क्षीणदेह हो आजतक विराज रहे हैं और सभीसे विरही होकर उन्होंने मस्तकमें जटाभारमें स्वच्छतोया सुरनदीको धारण किया था, इस समय भी वह उसी भावसे रहती हैं। काशीविरहविधुर काशीपति काशीविरहसे असह्य यातना भोग करनेपर भी सभासद्गणके निकट उसे छिपाते, इसलिये वह कुछ भी नहीं जान सकते। इसकी अपेक्षा आश्चर्यका विषय क्या है, स्वयं जगदीश अपनी ही मूर्त्ति विशेष अग्नि द्वारा आप ही क्लेश पाने लगे और जिन शशिकी तापनाशक जान भालदेशमें आश्रय दिया, वह आश्रित शशि ही उनके सन्तापकारण हुए? नीलकण्ठ सदा ही गलदेशमें गरल धारणकर किसी तरहसे सन्ताप प्राप्त नहीं होते, किन्तु विरहकालमें सुधाकरकी सुधामय किरण भी सन्तप्त होने लगी। विरहका कैसा असामान्य सामर्थ्य है! सर्व्वदा ही शरीराश्रयी सर्पगणका विषमय निश्वास भी जिनको किसी तरहका क्लेशदायक नहीं होता, आज वही दुर्व्विषविभव महादेवकी तापशान्तिके लिये हृदयनिहित हरिचन्दनपङ्क भी सन्तापदायक होने लगा। जिनके कृपा करनेसे, जीव संसारके तुल भ्रमचक्र अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है, उन्हीं काशीनाथकी भी उस समय विरहयातनाकी शान्तिवासनामें गृहीत पुष्पमा-

लासे भी सर्पभ्रम हुआ था। जिनको स्मरण करनेसे जीवका सब सन्ताप विनष्ट होता है, वह जगत्पति भी काशीविरह सन्तापसे अकेले निर्ज्जनका आश्रय करके प्रलापीकी तरह कहने लगे, मेरा यह असह्य सन्ताप काशीस्थ वायुका स्पर्शके सिवा जानेको नहीं; कारण हिमराशिमें अवगाहन करनेपर भी शान्त न होगा। दक्षसुताने पितृमुखसे पतिनिन्दा सुन देह-त्याग किया, मुझे जो असह्य सन्ताप हुआ था, सतीने फिर हिमालयके घर जन्म लेकर वह सन्ताप दूर किया था; हाय! उनकी अपेक्षा अधिक यातनाकर यह काशीविरह कैसे शान्त होगा? हे देवि! काशि! मेरा ऐसा सुदिन हो, कि दिनमें तुम्हारे अङ्गस्पर्शजनित सुखसाग-रमें अवगाहनकर यह विरहानलसे दग्ध-प्राय देह शीतल कर सकूं। हे जीवोंकी पापविनाशिनि काशि! तुम्हारा विरहजात अनल, भालस्थ चन्द्रका अमृत किरण भी घृतसंपृक्त वह्निकी तरह सदा वृद्धि पाता है। पहले सतीविरहवह्नि जैसे हिमा-लयसुतारूप सञ्जीवनौषधिलाभसे निर्व्वा-पित हुई थी, उसी तरह इस विरहसन्ता-पकी परम औषधि तुम्हारा दर्शन ही है। हाय! वह कैसे होगा? देवगणसे वह सन्ताप गुप्त रखकर निर्ज्जनमें पूर्व्वोक्त प्रका-रसे दुःख प्रकाश करने लगे। इससे सर्व्वसाक्षिणी जगन्माताने ही समझा, कि आशुतोष किसीके विरहसे व्याकुल हुए हैं, किन्तु उन्होंने भावको ऐसा छिपाया, कि देवी पार्व्वती उनकी अर्द्धाङ्गस्वरूपिणी होकर भी यह यातनाकर विरह किस-लिये है, वह जान न सकीं। फिर एक-दिन श्रीपार्व्वतीने विविध सुचारुवाक्यसे उनका सन्तोष विधानकर पूछा। हे प्रभो! देवदेव! जगत्में एसी कोई वस्तु नहीं, जो आपको दुर्लभ हो, वरञ्च आपकी विभूतिसे ब्रह्मादि देवगणका ऐश्वर्य्य है। निखिल जीवका विपद् विनष्ट हो रक्षावि-धान होता है। हे नाथ! आपके सर्व्व-शक्तिमान होनेपर भी किसके विरहने आपको ऐसा व्याकुल किया है? नाथ! यह चराचर क्षणकाल आपकी दृष्टिवहिर्भूत होनेसे प्रलय उपस्थित होता है और ब्रह्मा विष्णु दोनो आपके सेवक होनेकी वजहसे ही सृजनपालन करते हैं। नहीं तो अपना अपना ऐश्वर्य्य खो देते हैं। हे नाथ! चन्द्र, सूर्य्य और अग्नि यह तीनो, तीन-नेत्ररूप धारणकर आपकी देहमें ही अव-स्थित हैं; सुतरां कभी यह परितापजनक न होंगे और भगवती गङ्गा सर्व्वसन्तापना-शिनी जलमयी मूर्त्तिधारणकर आपके जटा-जूटमें अवस्थान करती हैं, तथापि आपको यह अहेतुक सन्ताप क्यों उपस्थित हुआ? हे महेश्वर! जो सब सर्प आपकी देहमें विचरण करते हैं, उन्हें ऐसा सामर्थ्य कहां, कि वह आपका शरीर विषसंयोगसे सन्तप्त

करें ? हे सतीसर्व्वस्वधन ! मैं सदा आपकी सेवा करती हूं, किन्तु किसी तरह भी सन्तापका कारण नहीं देख सकती ; तब किसलिये आप यह असह्य सन्ताप वहन करते हैं, वह मुझसे कहिये। विश्वमूलभूता भगवतीकी ऐसी समर्थसम्पन्न बात समाप्त होनेपर, विश्वपति महादेवने कहा,—हे काशि ! "अष्टमूर्त्तिसे संसारमें प्रमाण स्वरूप महादेवको भी तुम्हारे विरहसे अवस्थाविपर्य्यय हुआ है।" इस विरहकी महीयसी शक्तिप्रभावसे ही पार्व्वती भी जान गई हैं। तब सती महादेवकी बातसे उनका ताप काशी विरहजनित है, समझकर स्वयं ही सादर काशीविषयक बात कहने लगीं। पार्व्वतीने कहा, हे नाथ ! जिस समय समुद्रकी जलराशि उच्छलित हो नभस्थल पर्य्यन्त व्यापित होती है, उस प्रलयमें भी, मृणालदण्डपर रक्तकमलकी तरह, आप जिस काशीकी रक्षा त्रिशूलाग्रपर करते हैं, इस समय चलिये वहीं चलें। हे काशीपति ! पृथिवीस्था होकर भी पृथिवीमें अगणनीया काशीदर्शनसे मैं जो आनन्द अनुभव करती हूं, यह मन्दराद्रि परम सुन्दर होनेपर भी मेरा मन यहां सुखी नहीं रहता और जहां कलि या पापसे कोई भय नहीं, जहां मरनेसे फिर जठरयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती, हे देव ! कब मैं उस काशीका दर्शनकर आत्माको चरितार्थ करूंगी ? हे देव ! यह सच है, कि इस पर्व्वतमें बहुतर सुरम्य समृद्धिशाली प्रदेश हैं, किन्तु मैं निश्चय कहती हूं, काशी जैसी सर्व्वगुणसम्पन्ना कोई पुरी हो नहीं देखी। हे भवभयनाशन ! संसारमें शत शत नगरी हैं, जिनके दर्शनमात्रसे अन्तर विषयरससे पुलकित होता है ; किन्तु वह आपकी नगरी काशीका सौन्दर्य्य देख वह सब तुच्छ बोध होती हैं। हे नाथ ! काशीविरह मुझे आपकी अपेक्षा अधिक सन्ताप देता है, वह मनोहारिणी काशी या मेरी जन्मभूमि हिमालयको देखे यह घोर ताप किसी तरह निवारण न होगा। हे देव ! पहले मैंने सर्व्वसन्तापनाशिनी शान्तिदायिनी काशीमें आकर ही जन्मभूमिस्नेह भूलकर वहांसे भी समधिक शान्ति पाई थी। इस समय एक काशीके विरहसे जन्मभूमिविरह-जनित सन्ताप भी आकर मुझे क्लेश दे रहा है। इस संसारमें किसीने कभी किसी जगह साक्षात् मुक्ति नहीं पाई ; किन्तु आपके प्रसादसे इस काशीमें जीव सब सुख भोगकर चरममें मूर्त्तिमती मुक्तिका आश्रय लाभ करते हैं। काशीमें मरनेसे बिना क्लेशके जैसी मुक्ति मिलती है, और किसी जगह ब्रह्मचारी हो एकाग्रचित्तसे ब्रह्मसाधन या बहुतर यज्ञ या ब्रह्मध्यानसे भी वैसे सुखसे मुक्ति नहीं होती। वहां धनहीन दरिद्र भी जो सुख अनुभव करते हैं, स्वर्ग, मर्त्त्य, पाताल इन तीनो लोकके भीतर

कभी वैसा सुख लाभ नहीं होता। हे शिव! आपके अविमुक्तक्षेत्रमें सदा ही मुक्तिस्वरूपा लक्ष्मी विराजमाना हैं। यदि जीव भ्रमक्रमसे भी एक बार उसकी चिन्ता करें, तो षड़ङ्ग-योगका फल अनायास ही उनके करस्थ होता है। हे नाथ! काशी प्रवेश करनेसे ही जीवका चित्तचाञ्चल्य विदूरित हो जैसी देहसिद्धि लाभ होती है, अन्यत्र षड़ङ्गयोगके बार बार अभ्याससे भी उसके होनेकी सम्भावना नहीं। जो मनुष्य काशीदर्शनजन्य पुण्यसञ्चय नहीं करते, उनका पानीके बुलबुलेकी तरह चणस्थायी जन्म नितान्त निष्फल है। उन लोगोंकी अपेक्षा काशीके पशु-पक्षी भी श्रेष्ठ गण्य हैं। जो व्यक्ति काशी सम्मुखीन हो एकाग्रचित्तसे विस्फारित-लोचनसे काशीसन्दर्शनकर वहां वास करते हैं, उनके वह दोनो नेत्र, मुख, शरीर और मन, सभी कृतार्थ होते हैं। काशीस्थ मणिकर्णिकाकी धूलि अति पवित्र है, देव-दुर्लभ और तमोगुणकी विनाशक है; जो व्यक्ति उस जगह आपको प्रणामकर वहांके समुज्वल रजः ललाटदेशमें धारण करते हैं, उनका मनुष्यजन्म सफल है। जो व्यक्ति मणिकर्णिकामें देह त्याग करते हैं, आप उनके कर्णकुहरमें तारकब्रह्म नामरूप सुधा ढालते हैं, इसलिये वह स्थान देवलोक, नागलोक और सत्यलोकसे भी अतिशय श्रेष्ठ गण्य है। वहां जानेसे ही जीवकी तमोराशि विदूरित होती है, अग्नि और चन्द्रकी किरणपराभवकारिणी मणिकर्णिकाकी बहुजन्मकी तपस्या न रहनेसे लाभ नहीं किया जाता। मेरी विवेचना है, उस जगह मृत जीवगणके नित्यानन्दमय सुखसागरमें डुबानेकेलिये निर्व्वाण स्वयं शरीरी हो सुकोमल शय्यापर शयन किये हुआ हैं। जहां मृत्यु की परम लाभ विवेचनासे जीवगण गमनकर तत्रत्य वालुकाराशि द्वारा पूर्व्वमृत मुक्तिप्राप्त जीवगणकी गणना करते हैं, उस मणिकर्णिकाकी शोभा कैसी अपूर्व्व-रमणीय है। स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य जगदम्बिका इसतरह काशीकी वर्णनाकर वहां जानेके लिये फिर महादेवसे कहने लगीं, हे प्रमथेश! हे जगदीश! नित्यस्वाधीनवृत्ते! वरद! हे प्रभो! जिसमें उस आनन्दकानन काशीधाममें फिर जा सकूं, सत्वर उसका उपाय विधान करिये। महादेव इस तरह अमृतकी अपेक्षा तृप्ति-साधक काशीस्तावक सुन्दर सतीवाक्य सुनकर कहने लगे, अहो प्रिये! गौरि! तुम्हारे वचनामृतपानसे अतिशय तृप्त हुआ हूं। इस मूहूर्त्तमें ही काशी जानेके लिये उद्योग करता, किन्तु हे देवि! तुम मेरे कठोरव्रतकी बातसे विशेष ज्ञात हो, कि मैं अन्योपभुक्त वस्तु उपभोग नहीं करता। सम्प्रति ब्रह्माके वरसे बलवान् राजा दिवोदास काशीश्वर हो, उसे राज-नीतिके अनुसार भोग करते हैं; सुतरां

उनके अधीन हो काशीका अवस्थान लज्जाकर होनेकी वजह, वहां जानेका कोई उपाय नहीं देखता हूं। यदि उन धर्म्मानुसार प्रजापालक राजाको किसी तरह काशीसे अपसारित किया जाय, तभी जानेका सदुपाय हो सकता है। पापिष्ठके काशीवासमें विघ्न किया जाता है, किन्तु वह अति धार्म्मिक हैं; उनकी धर्म्मबुद्धि रहते सहज ही वह काशीसे बहिष्कृत नहीं किये जा सकते। यदि कोई वहां जाकर दिवोदासको धर्म्मसे स्खलितकर सके, तभी काशीसे वह दूर किये जा सकते हैं। हे प्रिये! धर्म्मपथके पथिकोंको बलपूर्व्वक विघ्न करनेसे उनका कुछ नहीं होता, प्रत्युत विघ्नकारी ही विपन्न होते हैं। हे प्रिये! मैं उनका किसी तरहका धर्म्मस्खलन न देखनेसे काशीसे उन्हें निकाल नहीं सकता; कारण धार्म्मिकगण मेरे द्वारा ही सदा रक्षित होते हैं। इस संसारमें धार्म्मिकगणपर जरा आक्रमण नहीं कर सकता, मृत्यु ग्रास करनेमें समर्थ नहीं होती और किसी तरहकी व्याधिसे वह पीड़ित नहीं होते। महादेव इस तरह कह रहे थे, कि इसी समय उन्होंने सामने स्वकार्य्यसाधनक्षम अति प्रौढ़ योगनीगणको देखा। हे मुने! अतःपर महेश्वरने पार्व्वतीसे परामर्शकर उनलोगोंको बुलाकर आज्ञा दी, कि हे योगिनीगण तुमलोग शीघ्र काशीधाम जाओ। वहां राजा दिवोदास धर्म्मानुसार प्रजापालन करते हैं; जिसमें वह राजा धर्म्मच्युत हो काशीसे दूरीकृत हों, वह करो। तुम सब योगबलसे मायाविनी हो सहज ही यह कार्य्य सिद्ध कर सकोगी। हे योगिनीगण! जिसमें मैं फिर काशीपुरीको नूतन भावसे निर्म्माणकर वहीं अवस्थान कर सकूं, उसका उपाय करो। योगिनीगणने महादेवके ऐसे आदेशको शिरोधार्य्य कर उनको प्रणामकर वहांसे प्रस्थान किया। वह अतिशय आनन्दसे परस्पर बातचीत करती करती आकाशमार्गसे उड्डीयमान हो, मन की तरह वेग धारणकर काशीकी ओर चलीं। राहमें जानेके समय वह सब इस तरह बातचीत करने लगीं;—आज हम सब कृतार्थ हुईं; कारण, स्वयं महादेवने अनुग्रहकर हमलोगोंको काशी भेजा है। आज हमलोगोंने दो दुर्लभ वस्तु पाई,—एक भगवान्‌की अनुग्रह, दूसरा काशीसन्दर्शन। इसतरह योगिनीगणने आनन्दितमनसे मन्दराचलसे आकाशपथमें उड़कर अतिद्रुतगति अवलम्बनकर क्षणकालमें दूर हीसे शिवपुरी काशीको देख पाया।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंश अध्याय।

चतुःषष्टि योगिनीका काशीमें आगमन।

कार्त्तिकेयने कहा, इसके उपरान्त योगिनीगण दूरसे दृष्टि प्रसारणकर काशी-

पर्य्यवेक्षणाकर अपने अपने नेत्रकी विशालताकी भूयसी प्रशंसा करने लगीं। काशीकी समुच्च अट्टालिकासमूहके ऊपरी भागमें उड्डीयमान सब पताका और तत्रत्य रत्नराजिके विमल किरणसे समुद्भासित निर्म्मल नभस्तल निरीक्षणाकर, उनलोगोंने विवेचना की, कि नगरी दूरस्थ पथिकोंको सादर आह्वान करती है। तब योगिनीगण मायाबलसे अपना अपना दिव्यरूप अन्तर्हितकर धूर्त्तवेश धारणाकर काशीमें आईं। किसीने योगिनी, किसीने तपस्विनी, किसीने सैरिन्ध्री, किसीने मालिनी, किसीने हज्जामकी पत्नीका वेश धारण किया। कोई चान्द्रायणव्रतनी कोई सूचीकर्म्मकुशला, कोई चिकित्सानिपुणा हुईं। किसीने धात्री, किसीने व्यालग्राहिणी, किसीने क्रयादिकार्य्यमें सुनिपुणा वेश्या, किसीने दासीका वेश धरा। कोई नर्त्तकी, कोई गायका, कोई वेणुवाद्यसे, कोई वीणावाद्यसे, कोई मृदङ्गवाद्यसे अभिज्ञा हुईं। कोई वशीकरणकारिणी, कोई कलाविद्यामें कुशला, कोई मुक्तामालाग्रथिता, कोई गन्धविभागविधिज्ञा कोई आलापकुशला हुईं। कोई गन्धविभाग विधा जानने लगीं। कोई रज्जुसे, कोई वंशमें अधिरोहणनिपुणा हो लोकानुरञ्जन करने लगीं। कोई छिन्न वस्त्र परिधानकर राहमें उन्मत्तकी तरह व्यवहार दिखाने लगीं। कोई अपुत्रककी पुत्रदा हुईं। कोई गणकपत्नी सजकर लोगोंके हाथपैरकी रेखा देख शुभाशुभ चिह्न कहने लगीं। कोई चित्रकारिणी हो जनगणका मन हरण करने लगीं। कोई वशीकरणमन्त्रज्ञा कोई गुटिका सिद्धिदायिनी, कोई अञ्जनसिद्धिदा हुईं। कोई पादुकासिद्धा, कोई धातुपरीक्षामें सुनिपुणा; कोई जलस्तम्भन, अग्निस्तम्भन, कोई कोई वाक्यस्तम्भन कार्य्यमें कुशला हुईं। कोई खेचरी, कोई अदृश्या होनेका सदुपाय प्रचार करने लगीं। कोई आकर्षण, कोई कोई उच्चाटन विद्याकी शिक्षा देने लगीं। कोई कोई ज्योतिःशास्त्रमें पण्डिता सजकर कोई कोई लोगोंका चिन्तित विषय प्रदान कर, कोई कोई निजशरीर लावण्यसे युवकोंका चित्तहरणकर भ्रमण करने लगीं। यह योगिनीगण नानारूप वेषभूषा द्वारा बहुविध रूप धारणकर गृहस्थोंके घरघर विचरण करने लगीं; इसतरह एक वर्ष अतीत होनेपर उन राजा दिवोदासका अनिष्ट करनेके लिये कोई छिद्र न पाकर सबने परामर्श मतसे "अकृतकृत्य हो मन्दर गमन श्रेयस्कर नहीं" विवेचनाकर काशीमें ही अवस्थान किया; कारण प्रभुके निकट क्रियादक्ष होनेकी वजह लब्धसम्मान कोई व्यक्ति प्रभुकार्य्य असम्पन्न रख उनके सन्निधानमें जानेका साहस नहीं करते। हे मुने! योगिनीगणने और भी देखा, कि हमलोग प्रभुके सन्निधानमें भी रह सकती

हैं; किन्तु काशी त्यागनेसे बचने नहीं पावेंगी। कुपित प्रभु, साधुभृत्यकी जीविका मात्र उच्छेद करते हैं; किन्तु काशी खोनेसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह चतुर्वर्ग ही खो जाते हैं। वह लोग ऐसा विचारकर तबसे आजतक त्रिभुवनसञ्चारिणी हो काशीमें ही अवस्थान करती हैं। जो व्यक्ति एकबार काशीको पाकर उपेक्षा करते हैं. निश्चय उन मूढ़का चतुर्वर्ग विनष्ट होता है। जो दुर्म्मति मुक्तिप्रदा श्रीमती काशीको प्राप्त हो अन्यत्र गमनके अभिलाषी होते हैं, उनका सभी निष्फल है। हमलोगोंने ईश्वरकी दयाके पात्र न होकर भी आज काशीसन्दर्शनकर जो पुण्यसञ्चय किया, उसके प्रभावसे ही वह सदय होंगे। इससे ही हम सब कृतार्थ हुईं। कुछ दिनके भीतर ही सर्व्वज्ञ देव सतीनाथ काशीमें आवेंगे; कारण काशीके सिवा कहीं उन्हें सन्तोष नहीं। इस काशीक्षेत्रमें भगवानकी अद्भुत शक्तिमात्र है, वह सबकी दृष्टिके बहिर्भूत है; एकमात्र महादेव ही वह सुख अनुभव करनेमें समर्थ हैं। योगिनीगण ऐसा स्थिरकर मायाबलसे अपनी अपनी मूर्त्ति आवृत रख उस अविमुक्तक्षेत्रमें ही अवस्थान करने लगीं। व्यासने कहा, मुनिवर अगस्त्यने यह सब बातें सुनकर फिर पूछा, हे देव! कार्त्तिकेय! उन योगिनीगणका क्या नाम है? काशीमें उनलोगोंकी पूजा करनेसे कैसा फल लाभ होता है और कौन कौन विशेष दिनमें उनकी पूजा अवश्य कर्त्तव्य है, वह कहिये। अगस्त्यके इसतरह पूछनेपर देव षड़ाननने कहा, हे मुने! यह सब बातें कहता हूं, तुम सुनो। कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! मैं योगिनीगणका नाम कहता हूं, इसके सुननेसे, जीवका सब पाप विनष्ट होता है। गजानना, सिंहमुखी, काकतुण्डिका, उष्ट्रास्या, हयग्रीवा, उष्ट्रग्रीवा, वाराही, शरभानना, उलूकिका, शिवारावा, मयूरी, विकटानना, अष्टवक्रा, कोटराक्षी, कुब्जा, विकटलोचना, शुष्कोदरी, लोलजिह्वा, श्वदंष्ट्रा, वानरानना, ऋक्षाक्षी, केकराक्षी, वृहत्तुण्डा, सुराप्रिया कपालहस्ता, रक्ताक्षी, शुकी, श्येनी, कपोतिका, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, शिशुघ्नी, पापहन्त्री, काली, रुधिरपायिनी, वसाधरा, गर्भभक्षा, शवहस्ता, अन्त्रपालिनी, स्थूलकेशी, वृहत्कुक्षी, सर्पास्या, प्रेतवाहना, दन्दशूककरा, क्रौञ्ची, मृगशीर्षा, वृषानना, व्यात्तास्या, धूमनिःश्वासा, व्योमैकचरणा, ऊर्द्धदृक, तापनी, शोषणीदृष्टि, कोटरी, स्थूलनासिका, विद्युत्प्रभा, वालाकास्या, मार्ज्जारी, कटपूतना, अट्टाट्टहासा, कामाक्षी, मृगाक्षी, मृगलोचना, इस चतुःषष्टि नामका जप जो व्यक्ति प्रतिदिन त्रिसन्ध्या करते हैं, उनकी दुष्टबाधा दूर होती है। यह सब पाठ करनेसे डाकिनी, शाकिनी, कुष्माण्ड या राक्षसगण

किसी तरहका उपद्रव नहीं कर सकती। यह सब नाम उच्चारण करनेसे शिशुगणकी पीड़ा और गर्भिणीकी गर्भवेदना शान्ति होती है और युद्धमें, राजसभामें और विचारमें जय लाभ होता है। जो व्यक्ति योगिनीपीठकी सेवा करते हैं, उनका सब अभीष्ट पूर्ण होता है। योगिनीपीठके लिये अन्यमन्त्रके जपसे भी विशेष सिद्धि लाभ की जाती है। धूप, दीप, बलि और उपहारादि द्वारा योगिनीगणकी पूजा करनेसे, वह सन्तुष्ट हो अभीष्ट प्रदान करती हैं। शरत्कालमें जो व्यक्ति यथाविधि योगनीपीठमें पूजाकर घृत द्वारा होम करते हैं, उन्हें सब तरहका सिद्धिलाभ होता है। आश्विन मासके शुक्ल प्रतिपद्से आरम्भकर नवमी पर्य्यन्त योगिनीगण पूजित होनेपर, अभीष्ट प्रदान करती हैं। जो कृष्णपक्षीया, चतुर्द्दशीको उपवासी रह योगिनीपीठमें रात्रिजागरण करते, उन्हें अनन्तफल होता है। जो भक्तिसहित प्रत्येक नामके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति दे रात्रिकालमें सूक्ष्मवदरो परिमाण घृताक्त गुग्गुल द्वारा पूर्व्वोक्त चतुःषष्टि योगिनीका नाम उल्लेखकर होम करते हैं, उन्हें अनन्तसिद्धि लाभ होती है। चैत्रमासके कृष्णप्रतिपद्को, पुण्यात्मा व्यक्ति क्षेत्रविघ्न शान्तिमानससे योगिनीगणकी यात्रा करेंगे। जो व्यक्ति इस दिन अवज्ञाकर योगिनीयात्रा नहीं करते योगिनीगण उन काशीवासियोंका विघ्न करती हैं। योगिनीगण काशीमें मणिकर्णिकाके ऊपर ही अवस्थान करती हैं। उनको नमस्कार करनेसे मानवका सब विघ्न दूर होता है।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।

षट्चत्वारिंश अध्याय।

लोलार्क-वर्णन।

कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! योगिनीगणके काशी आनेपर फिर महादेवने नितान्त अधीर हो, वहां सूर्य्यको भेजनेके मानससे कहने लगे, हे दिवाकर! अतिधर्म्मरूपी राजा दिवोदास जहां राजत्व करते हैं, "उस पुण्यक्षेत्र काशीमें तुम शीघ्र जाओ। वहां उन राजाकी पापबुद्धि हो, जिसमें शत्रु उस क्षेत्रमें विप्लव उपस्थित हो, वह करो; उन्हें कभी अपमानित न करना; कारण धार्म्मिकका असम्मान करनेसे स्वयं ही अवमानित होना पड़ता है और गुरुतर पापराशि वहन करना पड़ती है! यदि तुम निज बुद्धिबलसे किसी तरह यह काम सम्पादन कर सको, तो इस नगरमें दुःसह किरणजाल विस्तारकर आनन्दसे चिरदिन विराजोगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य्य, यह कोई भी उन्हें वश नहीं कर सकता। अधिक क्या, स्वयं काल भी उनसे पराजित हैं; जबतक जीवकी बुद्धि और मन धर्म्मपर स्थिर

रहता है, तबतक किसी तरहकी विपदसे भी उन्हें भय नहीं रहता। हे रवे! संसारमें किसीका भी चेष्टित तुमसे अज्ञात नहीं है; अतएव तुम शीघ्र कार्य्यसिद्धिके लिये गमन करो। स्कन्दने कहा, दिवाकर शिवका आदेश ग्रहणकर निज गमन-चारिणी मूर्तिके सहायसे काशी अभिमुख गमन करने लगे। इस समय उनका मानस काशीदर्शनोत्सुक होनेको वजह वह स्वयं सहस्रपाद होकर भी असंख्य चरण होनेके अभिलाषी थे। काशीदर्शनलालसासे उन्होंने अविश्रान्त गमनकर अपना "हंस" नाम सार्थक किया था। जीवगणके अन्तश्चर और बहिश्चर सूर्य्यदेव काशीमें या उन राजाका कुछ भी अधर्म न देख एक वर्ष काशीमें ही उनके छिद्रानुसन्धानमें रहे। सूर्य्य किसी दिन अतिथिके वेशमें उन राजाके राज्यमें दुर्लभ वस्तुकी प्रार्थनासे नानास्थान भ्रमण करते; किन्तु कहीं उनको प्रार्थित वस्तु दुर्लभ न होती। किसी दिन दाता हो दीन दुःखियोंका अभीष्ट पूरण करते, किसी दिन स्वयं दीन सजकर विचरण करते थे। किसी दिन गणक होते; किसी किसी दिन प्रजाके बीच शास्त्रका कुटिलअर्थ कर अविधिकार्य्य प्रतिपन्न करते। किसी दिन नास्तिक बनकर अप्रत्यक्ष वस्तु या कार्य्य अस्वीकार करते। किसी समय जटाधारी, कभी कभी दिगम्बर, कभी विषविद्याविशा-रद, कभी पाषण्डधर्म्मरत हो विचरण करते। किसी समय ब्रह्मवादी हो ब्रह्म प्रतिपन्न करते; कभी ऐन्द्रजालिक सजकर साधारणका मन मोहित करते। कभी नानाविध व्रतादिका उल्लेख और पाति-व्रत्यधर्म्मका उपदेशकर पतिव्रताओंका हृदय आनन्दरसमें डुबा देते थे। कभी कापालिक होते कभी ब्राह्मण हो सदनुष्ठान करते; किसी समय ब्रह्मज्ञानी किसी समय धातुवादी, कभी कभी राजपुत्र सजकर लोगोंका मन आकर्षण करते थे। कभी वैश्य, कभी शूद्र, कभी गृहस्थ, कभी ब्रह्मचारी, कभी वाणप्रस्थी, कभी प्रव्रज्या-श्रमी, कभी सर्व्वविद्यानिपुण, कभी कभी सर्व्वज्ञ बनकर साधारणका चित्त विस्मयपूर्ण करते थे। ग्रहराज सूर्य्य इस तरह नानाप्रकारसे काशीमें भ्रमण करके भी किसीका भी किसी तरहका छिद्र न देख विशेष उत्कण्ठित हो अपनी निन्दा करने लगे; पराधीन होना कैसा अनिर्व्वचनीय कष्टकर है, जिससे किसी दिन यशो-लाभकी आशा नहीं। सूर्य्यने कहा, यदि इस समय मैं अकृतकार्य्य हो सामान्य भृत्यकी तरह महादेवके पास उप-स्थित होऊंगा, तो वह अपना कार्य्य कुछ भी सिद्ध न हुआ देख अवश्य क्रोध करेंगे। उनका क्रोध स्वीकार करके ही किस तरह वहां जाकर उनके सामने नीच भृत्यकी तरह दण्डायमान हूंगा? यदि

यह अपमान मुझे स्वीकार भी हो, तब भी जगत्पति रुद्रदेव यदि एक बार क्रोध सहित मेरे प्रति तीक्ष्ण दृष्टिनिःक्षेप करेंगे, तब तो मैं उसी समय हरकोपानलसे पतङ्गकी तरह दग्ध हो जाऊंगा; उस समय स्वयं विधाता भी मेरी रक्षा न कर सकेंगे। सुतरां वहां जाना किसी तरह भी श्रेयस्कर नहीं है, इस समय क्षेत्र-संन्यास ग्रहणकर काशीक्षेत्रमें ही आश्रय निर्माणकर अवस्थान करूं। इसे किसी तरह परित्याग न करना होगा। फिर, प्रभुके निकट उनके कार्य्यकी सदसदवस्था निवेदन न करनेसे जो पाप अर्ज्जित होगा, काशीवाससे अवश्य वह पाप विनष्ट होगा; कारण काशीवाससे गुरुलघु सभी पाप क्षयप्राप्त होता है। विशेषतः मैं स्वेच्छासे यह पाप सञ्चय नहीं करता; इसलिये महादेवकी ऐसी आज्ञा है, कि स्वधर्म-रक्षा पहले कर्त्तव्य है, इस क्षणभङ्गुर देहसे धर्मरक्षा करनेसे त्रिभुवन उसकी रक्षा करता है। अर्थ और कामका रक्षण निष्प्रयोजन है; यदि वही प्रयोजन होता, तब भुवनत्रयके सुखसाधन उन कामको भगवान्ने किसलिये अनङ्ग किया और यदि अर्थ ही सार होता, तो राजा हरिश्चन्द्रने सर्व्वभूमिके अधीश्वर होकर भी विषयमें कुछ भी स्पृहा क्यों नहीं रखी? एवञ्च दधीचि प्रभृति ब्राह्मणगणका और शिवि प्रभृति राजगणका व्यवहार स्मरण-कर धर्म्मको ही सार समझकर विवेचना करना उचित है। अवश्य मैं काशीसेवा-सम्भूत धर्म्मप्रभावसे शिवकोपानलसे रक्षा पाऊंगा, इसमें सन्देह नहीं। जैसे लोग करस्थ रत्न उपेक्षाकर कांच ग्रहण नहीं करते, वैसे हो कोई सचेतन व्यक्ति दुर्लभ काशीधाम लाभकर उसे परित्याग नहीं करते। जो व्यक्ति वाराणसीमें आकर अन्यत्र जानेकी अभिलाषी होते हैं, वह अमूल्य निधिको पैरसे ठेलकर भिक्षा द्वारा धनसञ्चयकी वासना करते हैं। संसारमें सभी पुत्र, मित्र कलत्र, क्षेत्र और धन पाते हैं; किन्तु काशीलाभ सबकी भाग्यमें नहीं है। जो अदृष्टवान् पुरुष, त्रिलोककी उद्धरणकर्त्री काशीको लाभ करते हैं, वह असुलभ अनुपम सुखसागरमें सर्व्वदा ही उतराते हैं। सतीनाथ कोप करके मेरे बाह्यतेजकी ही हानि करेंगे, किन्तु मैं काशीवासी होनेपर आत्मज्ञानके लिये सुविमल तेज लाभ करूंगा। जबतक काशी-सेवाके लिये तेजःप्रकाश न हो, तबतक खद्योतकी तरह अपरापर तेजोराशि दीप्ति पाती है। विदितकाशीप्रभाव तमोनाशक सूर्य्यने इस तरह चिन्ताकर द्वादशधा विभक्त हो काशीमें ही अवस्थान किया; तबसे काशीधाममें लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, अरुणादित्य, खखोल्कादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य और गङ्गादित्य,

इन द्वादश आदित्य द्वारा सदा पापीगणसे रक्षित होते हैं। काशीविलोकनसे दिवाकरका चित्त लोल हुआ था इसलिये उसका "लोलार्क"नाम हुआ, काशीमें दक्षिण ओर असिसङ्गमके निकट लोलार्क अवस्थित है, उससे काशीवासीका सदा ही मङ्गल होता है। अग्रहायणमासके रविवारको षष्ठी या सप्तमी तिथिमें लोलार्ककी वार्षिक यात्रा करनेसे, मनुष्यका सब पाप विदूरित होता है। एक वर्षमें मनुष्यका जो पाप सञ्चय होता है, इस दिन लोलार्कदर्शन करनेसे वह पाप मुहूर्त्तमें ही विनष्ट होता है। मनुष्य असिसङ्गममें स्नानकर शास्त्रानुसार पितृ और देवगणका श्राद्ध या तर्पण करनेसे, पितृऋणसे मुक्त होते हैं और लोलार्कसङ्गममें स्नान, दान, होम और देवतार्चना प्रभृति जो कुछ पुण्यकार्य्य किया जाय, सभी समस्त फल प्रदान करते हैं। सूर्य्यग्रहणके समय यहां ब्राह्मणको दान देनेसे तत्कालमें कुरुक्षेत्रमें दानकी अपेक्षा दशगुण अधिक फल मिलता है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको असिगङ्गासङ्गमस्थानमें लोलार्कमें स्नान करनेसे, मनुष्यका सप्तजन्मार्ज्जित पाप विदूरित होता है। जो व्यक्ति शुचि हो प्रति रविवारको लोलार्कसन्दर्शन करते हैं, उनको इहलोकमें किसी तरहका दुःख नहीं रहता और प्रति रविवारको जो व्यक्ति लोलार्कके पादोदककी सेवा करते हैं, उनपर दद्रु प्रभृति रोग कभी आक्रमण नहीं करते। जो व्यक्ति काशीमें रहकर भी उनकी सेवा नहीं करते, वह सदा क्षुधा और रोगसम्भूत क्लेशसमूहसे पीड़ित होते हैं। यह तीर्थ काशीके यावतीय तीर्थोंका शिरोभाग है। अन्यान्य तीर्थचय इसके ही अङ्गमात्र हैं। कोई असिसङ्गम तीर्थके षोड़शांशके एकांश योग्य भी नहीं है। समुदयतीर्थमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है,केवल इस सङ्गम स्थानमें अवगाहन करनेसे भी मनुष्य वही फल पाते हैं। हे मुनिवर! इसे अर्थवाद या स्तुतिवाद कहकर विवेचना न करना। यह यथार्थ बात है इसीलिये साधुगण अति समादरसे इसके ऊपर अत्यन्त श्रद्धा करते हैं। जहां साक्षात् विश्वनाथ और देवनदी गङ्गा विराज रही हैं, उस पुण्यक्षेत्रमें आत्माभिमानी मूढ़ तार्किकगण ही इस वाक्यको मिथ्यादोषसे कलुषित करते हैं, तर्कबलसे अलङ्कृत मूढ़लोग काशीके इन सब वाक्यको अर्थवादसे कल्पनाकर युग युगमें विष्ठाके कीट रूपमें जन्म ले कभी सद्गति नहीं पा सकते। हे मुनिवर! त्रिलोकीमण्डप भी अपूर्व्वमहिमासे जिसकी तुलना नहीं पा सकती, उस काशीकी महिमा कभी नास्तिक, वेदनिन्दिक, अन्त्यजाति, अविधिकार्य्यकारी या जो भिक्षा या उदरके लिये नितान्त लालायित हैं, उनके सामने वर्णन न करेंगे। काशीमें दक्षिण

घोरसे पापराशि प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं है; कारण वहां लोलार्कका असह्य सन्ताप और असिधाराकी प्रखर धार सदा ही उसे दूर करनेके लिये उद्यत है। इन लोलार्ककी महिमा, जीवके काशीकुहरमें प्रवेश करनेपर, दुःखमय संसारमें उनको कुछ भी कष्ट नहीं रहता।

षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंश अध्याय।

उत्तरार्क वर्णन।

स्कन्दने कहा, काशीकी उत्तर और अर्क नामक जो कुण्ड है, वहां ही उत्तरार्क नामक सूर्य्य अवस्थान करते हैं। महा-तेजा उत्तरार्क सूर्य्य जीवगणकी दुःख-राशि दूरकर अनुपम आनन्द विधान करते हुए सदा काशीकी रक्षा करते हैं। हे मुनिवर! इन सूर्य्यसम्बन्धीय एक अतीव सुन्दर इतिवृत्त कीर्त्तन करता हूं, सुनो पूर्व्वमें आत्रेयवंशसम्भूत शुभव्रत नामक एक ब्राह्मण काशीमें वास करते थे। वह सदा सत्कार्य्यका अनुष्ठान करते थे; उनकी शुभव्रता नामिका पत्नी भी उन्हींकी अनु-रूपा हो पतिसेवाको प्रधानरूपसे लक्ष्य रख सदा ही धर्म्मकार्य्यमें व्यापृता रहती थीं। कालक्रमसे उनके गर्भसे शुभव्रतके औरससे मूलानक्षत्रके प्रथम पादमें और वृहस्पति केन्द्रस्थित होनेपर शुभक्षणमें एक अति सुलक्षणा सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। वह कन्या पितृगृहमें लालिता हो शुक्ल-पक्षीय शशिकी तरह दिन दिन वृद्धि पाने लगी। क्रमसे वयःप्राप्त होनेपर पिता-माताकी प्रियकारिणी हो अति निपुणा-भावसे गृहकार्य्य सब निर्व्वाह करने लगी। जैसे जैसे उसका वयस अधिक हो यौवन उपस्थित होने लगा, वैसे ही वैसे मातापि-ताका मानस, प्रबलचिन्तास्रोतमें बहने लगा; उनलोगोंको सदा ही चिन्ता होती— किस उपायसे इस सुलक्षणा कन्याका विवाह करूंगा। कुलीन, युवा, सुशील, विद्वान्, धनी ऐसा सर्व्वगुणाधार वर इसके उपयुक्त है, उसके हाथमें पड़नेसे ही सुखभागिनी हो सकती है; किन्तु ऐसा सुपात्र कहां मिलेगा? इस तरह चिन्तामें सदा आसक्त रह शुभव्रत एक दिन दारुण ज्वरसे पीड़ित हो मृत्युगत हुए; किसी औषधसे वह चिन्ताज्वर उपशान्त नहीं हुआ। कन्याके मूलानक्षत्रमें जन्मनिबन्धनदोष प्रयुक्तासे ही वह दारुण चिन्ता-ज्वरसे अभिभूत हो गृह, स्त्री, धन सभी परित्यागकर इहलोकसे अप-सृत हुए। स्वामीका देहान्त देख शुभ-व्रता, स्नेहकी कन्याको भी भूल जगत्को सतीधर्म्म सिखा उनकी अनुमृता हुई। स्वामी जीवित हों या मृत सब अवस्थामें ही पतिव्रता नारी उनका अनुसरणकर अपने परम धर्म्मकी रक्षा करती हैं। पति-चरणसेविका स्त्री कभी विपद्ग्रस्ता नहीं

होतीं इसलिये पुत्र, पिता, माता या और किसी वस्तुको उन पतिव्रताकी रक्षाका भार ग्रहण करना नहीं पड़ता। इसके उपरान्त उस कन्याने अति दुःखके साथ मृत पितामाताकी उर्द्धदैहिक क्रिया समापनकर शोककातरा हो किसी तरह दश दिन अतिवाहन किया। तब सुलक्षणा अपनेको दरिद्रा और अनाथा देख चिन्तासागरमें उतराती हुई सोचने लगी, कि मैं पितृमातृहीना अकेली कैसे इस संसार-समुद्रसे पार होऊंगी? मेरा कोई अभिभावक नहीं है, पितामाताने भी किसीके हाथमें मुझे अर्पण नहीं किया, इस समय पदृत्ता मैं किस तरहसे अपनी इच्छासे अभीष्ट व्यक्तिके गलेमें वरमाल्य दे उसे अभिभावक करूंगी? यदि किसीसे विवाह हो करूं, तो यदि वह गुणवान् या सत्कुलसम्भूत न हो या मेरे मनके साथ उसका अनैक्य हो, ऐसा होनेसे उसे लेकर कैसे संसार करूंगी? इसतरह वह सर्व्वगुणशालिनी सुलक्षणाने महाचिन्तासे व्याकुल होकर भी नित्य असंख्य युवकोंकी प्रार्थना अवहेलाकर किसीको भी स्वदेह दान न किया। अकालमें पितृमातृवियोग होनेके समयसे, नितान्त शोकसे अधीरा हो सुलक्षणा जनक-जननीका स्नेह स्मरणकर, संसारको असार समझ अपनी निन्दा करने लगी;—जिन्होंने मुझे उत्पादनकर पालन किया था; हाय! मेरे वह माता-पिता मुझे छोड़कर कहां गये? यह अनित्य संसार कुछ भी नहीं है, मेरे सामने मेरे जनक जननीने जो गति पाई है, इसी मुहूर्त्त में भी इस नश्वर देहसे अपसारित हो, वही दशा पा सकती हूं। अतएव अनित्य देह पातकर नित्यधर्म्म सञ्चय करूंगी। जितेन्द्रिया कुमारी सुलक्षणा मन ही मन इस तरह निश्चयकर कठोर ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनकर पूर्व्वोक्त उत्तरार्कके सूर्य्यके सन्निधानमें स्थिरचित्तसे घोर तपस्या करने लगी। उसके तपस्यारम्भके दिनसे प्रत्यह एक कृशाङ्गी बकरी वहां आकर स्थिरचित्तसे उसका तपोव्यापार देखती थी, वह बकरी वहांके जो कुछ अनायास लभ्य तृण पत्रादि होते भक्षणकर उस अर्ककुण्डका जल पानकर फिर अपने पालकके आलयमें जाती; फिर प्रभात होते ही सुलक्षणाके निकट आ उसीतरह प्रायः समस्त दिन अतिवाहित करती थी। इसतरह पांच या छः वर्ष अतीत होनेपर एक दिन महेश्वर पार्व्वतीसह पैदल यदृच्छाक्रमसे वहां उपस्थित हुए। भगवान्ने वहां आकर उत्तरार्कके पास उग्र तपस्यामें नियुक्ता तपःकृशा स्थाणुकी तरह निश्चला उन सुलक्षणाको देखा। उन्हें देखते ही पार्व्वतीने दयार्द्रचित्ता हो अनाथाको वरदानसे अनुगृहीत करनेके लिये जगत्पतिको अनुरोध किया। दयामय विश्वनाथने भी पार्व्वतीकी बातसे और

सुलक्षणाकी तपस्यामें ऐकाग्रता देख वर-प्रदानाभिलाषी हो कहा, हे सुव्रते सुलक्षणे! तुम्हारी कठोर तपस्यासे मैं प्रसन्न हो वरदानमें उद्यत हूं; तुम किस वस्तुकी अभिलाषिणी हो वह मुझसे कहो, महादेवका ऐसा अमृतोपम तापदूरक वाक्य सुनकर सुलक्षणाने नेत्र खोले; तब देखा, कि सामने उनके चिराराध्य धन शङ्कर, पार्व्वतीको वामभागमें रखे वरदानके लिये उद्यत हुए हैं। सुलक्षणा उनके दर्शनसे हाथ जोड़ नमस्कार करती हुई विचार करने लगीं, "किस वरकी प्रार्थना करूंगी?" इसी समय पुरोभागमें उस बकरीको देखकर फिर चिन्ता की, इस संसारमें सभी निज प्रयोजन सिद्धिके लिये जीवन धारण करते हैं, किन्तु जो परोपकारार्थ आत्मजीवन उत्सर्ग करते हैं, वही सार्थकजन्मा होकर रहते हैं। यह अनाथा बकरी मेरी तपःसाक्षिभूता रहकर बहुत दिनोंसे सेवा करती आती है; मुझे उचित है, कि इसके लिये ही वर प्रार्थना करूं। सुलक्षणाने इसतरह स्थिरकर महादेवसे कहा, हे देव! दयामय! यदि आपका मुझे वर देनेका अभिलाष हो, तो पहले इस बराकी बकरीके प्रति अनुग्रह करिये; कारण इस बकरीने मेरी बहुत सेवा की है; किन्तु यह पशु होनेको वजह कोई अभिलाष व्यक्त नहीं कर सकती। भक्तभयभञ्जन भगवान् महेश्वरने सुलक्षणाकी निःस्वार्थ परोपकारबुद्धि देख परम सन्तुष्ट हो पार्व्वतीसे कहा, हे देवि! गिरिजे! एकबार देखो,—साधुव्यक्तिकी कैसी परोपकारकारिणी महती बुद्धि होती है! संसारमें वही धन्य हैं और सब धर्म्म उनके ही करस्थ हैं, वह सर्व्वदा सर्व्वप्रकारसे परोपकारकी चेष्टा करते हैं। हे प्रिये! उसके सिवा सञ्चित जितने पुण्य हैं, वह चिरस्थायी नहीं; एकमात्र परोपकाररूप सुमहत् पुण्य ही दीर्घकाल वर्त्तमान रहता है। हे देवि! यह सुलक्षणा सबतरहसे प्रशंसाकी पात्री हैं। अब तुम यह कहो, कि इस समय इन्हें और छागीको कौन वर देकर सन्तुष्ट करूं। पार्व्वतीने कहा, हे सृष्टिकर्त्तृकगणके भी विधातः! हे सर्व्वज्ञ! हे भक्तार्त्ति हारिन्! यह सुलक्षणा मेरी सखीरूपमें परिगणिता होंं। कर्पूरतिलका, गन्धवारा, अशोका, विशोका, मलयगन्धिनी, चन्दननिश्वासा, मृगमदोत्तमा, कोकिलालापा, मधुरभाषिणी, गद्यपद्यनिधि, अनुकाक्षा, इङ्गज्ञ लेङ्गितज्ञा, ज्ञातमनोरथा और गानचित्तहरा प्रभृति सखीगणसे जैसे मैं सदा आनन्द पाती हूं, इसलिये उनलोगोंको अतिशय चाहती हैं, उसी तरह यह सुलक्षणा भी मेरी प्रतिपात्री होंं। सुलक्षणा बाल्यावधिसे ब्रह्मचर्य्यका अनुष्ठान करती हैं, इसलिये इस पार्थिवशरीरको ही दिव्यवसन, दिव्य भूषण, दिव्य गन्ध और दिव्य माल्य परिधानकर दिव्य ज्ञानवती हो

चिरकाल मेरी सहचरी होकर रहें और यह बकरी काशीराजसुतारूपमें जन्म पाकर मर्त्त्यधाममें श्रेष्ठ विषयसुख भोगकर चरम समयमें नित्यानन्दमय निर्व्वाणपद पावे। हे देव! काशीपते! इस बकरीने पौषमासके रविवारको दारुण शीतजन्य क्लेश सहकर सूर्य्योदय न होनेपर ही अर्क-कुण्डमें स्नान किया है, उस पुण्यसे और मेरे वरप्रभावसे काशीराजकी स्नेहमयी कन्या होकर जन्म पावे। हे नाथ! आजसे इस कुण्डका नाम "वर्करीकुण्ड" हो और संसारमें यह बकरी सबकी पूज्या हो। पौष-मासके रविवारको काशीस्थ व्यक्तिमात्र ही भक्तिभावसे इस कुण्डमें उत्तरार्कदेवकी यात्रा करें। कार्त्तिकेयने कहा, हे महा-भाग अगस्त्य! तुमसे यह लोलार्क और उत्तरार्ककी महिमा वर्णन की; इसके उपरान्त साम्बादित्यका विषय कीर्त्तन करता हूं, सुनो! हे मुनिवर! जो व्यक्ति इन अर्कद्वयका पवित्र इतिहास सुनते हैं, उन्हें कभी व्याधिभय या दारिद्र्यनिबन्धन क्लेश उपस्थित नहीं होता।

सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥४७॥

अष्टचत्वारिंश अध्याय।

साम्बादित्य-माहात्म्य कथन।

स्कन्दने कहा, हे मैत्रावरुणि! सुनो। पूर्व्वमें यदुवंशमें देवकीके गर्भसे वसुदेवके और-ससे, अग्निकी तरह अति तेजस्वी स्वयं देव वासुदेव दैत्यनाश द्वारा भूमण्डलके भार-हरणार्थ अवतीर्ण हुए थे। हे मुनिवर! सूर्य्यवत् अति तेजःशाली उन भगवान् वासु-देवके, स्वर्गवासीकी अपेक्षा भी अधिक सुशील, अति मनोहर सौन्दर्य्यसम्पन्न, अतिशय वीर और बलवान्, कल्याण-सूचक लक्षणसमन्वित अनेकानेक शास्त्रतत्त्वज्ञ अशीतिलक्ष संख्यक पुत्र हुए। एक दिन ब्रह्मतनय तपोनिधि गगनचारी देवर्षि नारद वासुदेवतनय सन्दर्शनार्थ, विश्वकर्म्माके कौशलमय शिल्पकी फलस्वरूपा, स्वर्णपुरीकी अपेक्षा भी सौन्दर्य्यशालिनी द्वारकामें आये। वल्कलका कौपीन उनका परिधान था; कृष्णसार मृगचर्म्माम्बर उनके गात्रमें शोभित था; उनके हाथमें ब्रह्म-दण्ड था; मुञ्जनिर्म्मित सूत्र उनकी कटिमें बद्ध था, वक्षःस्थलस्थ तुलसी-मालासे शरीर भूषित, गोपीचन्दनसे देह चर्च्चित, अति दीर्घकालव्यापी तपश्च-रणसे शरीर कृश और वह मूर्त्तिमान् अग्निकी तरह जाज्वल्यमान दिखाई देते थे। यादवतनयगणने ऐसे देवर्षि नारदका सन्दर्शनकर, विनय सहित अंशदेश अवनत और मस्तकमें अञ्जलि बांधकर अतिशय नम्रता सहित नमस्कार किया। उनमेंसे केवल सर्व्वापेक्षा देहशोभामें अति अहङ्कारी साम्बने नारदके सौन्दर्य्यसम्पत्का उपहासकर उन्हें प्रणाम नहीं किया।

मुनिश्रेष्ठ नारद, साम्बका वह मनोभाव जान गये और कुछ व्यक्त न करके कृष्णके मन्दिराभ्यान्तरमें गये। भगवान् वासुदेवने नारदको आते देख अति आदरके साथ प्रत्युत्थान (अभ्यर्थना) किया और मधुपर्क द्वारा पूजा करनेके उपरान्त आसनपर उपवेशन कराया। वासुदेवके साथ अनेकानेक कथोपकथनके बाद जब नारदने देखा, कि भगवान्के पास और कोई नहीं है, तो इस तरह साम्बका कार्य्य उनसे जताया;—"हे यशोदानन्ददायिन्! साम्बका चरित्र और सौन्दर्य्यराशि देख बोध होता है, कि इन साम्बसे निश्चय ही नितान्त सम्भ्रान्त होनेपर भी सब साध्वी स्त्रीगणकी धर्म्मरक्षा करना कठिन होगा। यह आश्चर्य्यका विषय नहीं है; कारण नारीगण कुल, शील, विद्या और धनकी अपेक्षा न कर कामविमोहित हो केवल रूपकी ही पक्षपातिनी होती हैं। इस त्रिलोकीमें साम्ब ही सर्व्वापेक्षा सुन्दर और हरिणलोचनागण भी स्वभावतः चञ्चलहृदय होती हैं। हे नाथ! आप निश्चय जानें, कि आपकी प्रधान आठ महिषीके सिवा समस्त यादवललनागण इन साम्बके रूपसे मोहित हुई हैं। सर्व्वज्ञ भगवानने नारदकी ऐसी बात सुनकर और स्त्रियोंकी चञ्चलचित्तता सोचकर, उसीको सत्य समझकर ग्रहण किया। जबतक स्वप्रणयाभिलाषी पुरुषके साथ निर्ज्जनमें एकत्रवास न हो, तभीतक स्त्रीगणका धैर्य्य और मौखिक विवेकशक्ति रहती है। भगवान् श्रीकृष्णने ऐसी विवेचनाकर विवेकरूप सेतु बांध क्रोधरूप नदीका प्रबलवेग रोधकर नारदको विदा किया। देवर्षिके जानेपर प्रभु नाना अनुसन्धानसे भी साम्बका कोई दोष देख न सके। कुछ काल बीतनेपर देवर्षिनारद फिर द्वारकामें आये। उन्होंने, उस समय भगवान् क्रीड़ापरायण यादव-बधूगणके साथ क्रीड़ामें नियुक्त हैं जानकर, बाहर क्रीड़ामें व्यापृत साम्बको बुलाकर उन्हें कृष्णके पास जानेके लिये आदेश दिया। "स्त्रीगणपरिवृत्त निर्ज्जनस्थित पिताके पास जाना उचित नहीं होता; फिर ब्रह्मचारी देवर्षिका वाक्य अवहेलन ही कैसे करूं?" ऐसी चिन्ताने उस समय साम्बके मनको विचलित किया। "देवर्षिका समुदय अङ्ग ही जलदङ्गारवत् अतिशय तेजःशाली बोध होता है। पहले एक दिन और देवर्षि द्वारकामें आये थे; उस दिन यदुवंशके सब तनयने इन्हें प्रणाम किया, मैंने नहीं किया। यह पूर्व्वकृत अपराधके ऊपर, दूसरे इस समय यदि पिताके पास न जाकर देवर्षिका आदेश अमान्य करूं, तो मेरे यह दो विषम अपराध देखकर निश्चय ही मेरा विषम अनिष्ट करेंगे ऐसे समयमें पिताके पास जानेसे, उनके क्रुद्ध होनेकी विशेष सम्भावना है, किन्तु वह भी

मेरी श्लाघाका विषय हुआ है; किन्तु ब्रह्मकोपाग्निमें पड़नेसे मेरे उद्धारकी कोई सम्भावना नहीं है। कारण, शास्त्र ही कहता है, कि जो कुल ब्राह्मणकी कोपाग्निमें पतित होता है, उसमें फिर कभी अङ्कुर नहीं होता; किन्तु दावानलदग्ध वनमें जैसे दूसरी बार अङ्कुर होनेकी सम्भावना होती है, उसीतरह दूसरे व्यक्तिके कोपदग्ध कुलमें, अङ्कुर कभी होनेपर भी हो सकता है। इसतरह सोचते सोचते साम्बपितृस्थानमें गये। साम्ब भीतचित्तसे पितृमन्दिरमें प्रवेशकर, स्त्रीगण परिवृत भगवान् वासुदेवको प्रणामकर देवर्षिके आनेका समाचार देना चाहते थे, कि इसी अवसरमें देवर्षि स्वकार्य्यसिद्धिके लिये साम्बके पश्चात ही कृष्णसन्निधानमें उपस्थित हुए। भगवान्ने नारदको आते देख सम्भ्रम सहित निज परिधेय पीत वसनादि यथास्थान सन्निवेश करते करते गात्रोत्थान किया। कृष्णपत्नीगणने स्वामीका ऐसा भाव देखकर सभी सातिशय लज्जित हो अपना अपना वस्त्र यथास्थानमें निवेशित किया। तब भगवान् देवकीनन्दनने समादरकर देवर्षिका हस्तधारणकर अपनी महामूल्य शय्यापर बैठाया। यह देखकर साम्ब अवनतमस्तक हो वहांसे प्रस्थानकर, निज क्रीड़ास्थानमें उपस्थित हुए। महामुनि नारदने साम्बदर्शनसे ही कृष्णपत्नीगणका ऐसा सलज्ज भाव समझकर भगवानसे सम्बोधनकर कहा,—हे नारायण। मैंने पहले साम्बविषयक जो बातें कही थीं, देखिये वह सच हैं या नहीं। इस समय साम्बके असामान्य रूपदर्शनसे ही इन यादवललनाओंने हृदयमें जननीविरुद्ध लज्जाभाव आश्रय किया है। वासुदेवने देवर्षिके वाक्यसे दृढ़विश्वासी हो सहसा क्रोधसे साम्बको बुलाकर शाप दिया; किन्तु इस विषयमें साम्ब वास्तविक ही निर्दोष थे, कारण वासुदेवकी स्त्रीसमूहको वह उस समय अपनी माता जाम्बवतीकी तरह ही देखते थे। भगवानने साम्बको अभिसम्पात किया, कि "साम्ब! तुम्हारे इस समयके आगमनजनित दुष्कार्य्यके निमित्त तुम्हारी मातृवर्ग तुम्हारा सौन्दर्य्य दर्शनकर विचलितभाव प्राप्त हुई थीं, इसलिये तुम इस मुहूर्त्तमें ही कुष्ठरोगग्रस्त होगे।" ऐसा भयङ्कर अभिसम्पात सुनकर कुष्ठव्याधिके भयसे साम्बका शरीर कांपा और पापशमनके लिये वह भगवानका स्तव करने लगे। स्वतनय साम्बको कार्य्यतः निर्दोष जान भगवानने उन्हें कुष्ठरोगसे परित्राण पानेके लिये विश्वेश्वराधिष्ठिता वाराणसीमें जाने कहा और महापापसे परित्राण वाराणसीके सिवा और किसी स्थानमें नहीं हो सकता, इसलिये वहां जाकर विहितरूपसे शिवकी उपासना करनेसे आपसे मुक्ति मिल सकती है। जिससे

उद्धारका उपाय मुनिगण भी चिन्ताकर जान नहीं सकते। जहां साक्षात् विश्वेश्वर और गङ्गा नियत विराज रही हैं, वहां ऐसे सब पाप भी अनायास प्रशमित होते हैं। केवल मात्र स्वयं जो सब पाप किया जाता है, उससे ही वाराणसीमें उद्धार होता है, ऐसा नहीं, विश्वेश्वरके प्रज्ञाप्रभावसे वहांके प्राणिगण स्वभावकार्य्य पापमय संसारसे भी उद्धार होते हैं और हो रहे हैं। मृत जीवगणके उद्धारके निमित्त कृपापरवश भगवान् पुरारिने पुराकालमें यह वाराणसीक्षेत्र निर्म्माण किया है। जो जीव वहां देहत्याग करते हैं, उन्हें फिर संसारमें दूसरीबार आना नहीं पड़ता। अतएव हे साम्ब! तुम महादेवके आनन्दवन वाराणसीधाममें ही इस पापसे मुक्ति पाओगी, शीघ्र वहां जाओ; वाराणसीके सिवा कहीं भी तुम्हारी पापशान्ति होनेकी सम्भावना नहीं। सब तरहके शुभाशुभ कार्य्यसे विरत हो, कृतकार्य्य नारदने भी कृपाका आदेश ग्रहणकर गगनपथसे प्रस्थान किया। फिर साम्ब वाराणसीमें आये। वहां एक कुण्ड निर्म्माणकर सूर्य्यकी उपासना करने लगे और सम्पूर्णरूपसे उन्होंने पापसे उद्धार पाया। वाराणसीस्थित, साम्ब द्वारा उपासित साम्बादित्य नामक सूर्य्य विग्रह उस समयसे समस्त उपासकवृन्दको सब तरहका विपत्शून्य ऐश्वर्य्य देते आते है।

जो व्यक्ति रविवारको अरुणोदयके समय साम्बकुण्डमें स्नानकर भक्तिभावसे साम्बादित्यकी पूजा करते हैं, वह कभी रोगाक्रान्त नहीं होते। जो नारी उनकी सेवा करती हैं, वह कभी विधवा नहीं होतीं और वन्ध्या स्त्री भी उनकी उपासना करनेसे सच्चरित्र, सुन्दर और गुणवान् पुत्रलाभ कर सकती हैं। हे द्विज! शास्त्रबलसे माघमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी रविवारको हो, तो मङ्गलकर सूर्य्य ग्रहणके समान एक महापर्व्वदिन होता है। उस दिन अरुणोदयकालमें साम्बकुण्डमें स्नानके उपरान्त जो साम्बादित्यकी अर्च्चना करते हैं, उनका अति उत्कट रोग शान्त होता और वह विपुल धर्म्म और ऐश्वर्य्य भी पानेमें सक्षम होते हैं। सूर्य्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें पुण्यजलाशयमें स्नान करनेसे, मनुष्य जो पुण्य सञ्चय कर सकते हैं, माघमासमें सप्तमी तिथिको काशीधामके साम्बकुण्डमें स्नान करनेसे भी वह पुण्य सञ्चय होता है। माघमासके रविवारको उस साम्बकुण्डका वार्षिक उत्सव होता है; उस दिन जो मनुष्य साम्बकुण्डमें स्नानकर अशोकपुष्प द्वारा साम्बादित्यकी पूजा करते हैं, वह कभी दुःखमें पतित नहीं होते; परन्तु उसी समय उनका संवत्सरकृत पाप सम्पूर्णरूपसे प्रशमित होता है। महात्मा साम्ब विश्वेश्वरकी पश्चिम ओर सम्यकप्रकारसे सूर्य्यदेवकी पूजा

करते हैं। हे अगस्त्य ! यह आदित्य विग्रहका विषय मैंने तुमसे कहा । इनकी उपासना करनेसे, प्रणाम करनेसे और आठ बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्यका सब पाप नष्ट होता है और समग्र काम्यविषयका फल मिलता है। हे महामुने ! यह साम्बादित्यका माहात्म्य तुमसे कहा ; जो नर इस उपाख्यानको सुनते हैं, उन्हें फिर यमलोकमें रहना नहीं पड़ता । हे मुनिवर ! इसके उपरान्त तुम्हें उन द्रौपदादित्यका विषय सुनाऊंगा, जिनकी आराधनासे भक्तगण अभीष्टफल पाते हैं ।

अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश अध्याय ।

द्रौपदादित्य और मयूखादित्य वर्णन ।

सूतने कहा, हे मुनिवर व्यास ! जिस समय कार्त्तिकेय अगस्त्य मुनिसे यह सब कहा था, उस समय, द्रौपदी कहां थीं ? व्यासने कहा, हे सूत ! पुराणशास्त्रमें भूत, भावी और वर्त्तमान, त्रिकालकी बात मालूम होती है ; इसलिये उस वेदोपम पुराणशास्त्रपर किसी तरहका सन्देह करना उचित नहीं । स्कन्दने कहा, हे मुनिवर ! अवहित हो । पहले देव पञ्चानन, जगत्के हितार्थ, स्वयं पञ्चधा विभक्त हो महीपति पाण्डुके पञ्च तनयरूपसे आविर्भूत हुए थे और जगदम्बिका सती भी पतिविच्छेद न सहकर, यज्ञशील राजाके यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हो, उन लोगोंकी पत्नी हुई थीं। रुद्रदेवके दुष्ट दमन करनेके लिये पञ्चपाण्डवरूपसे धरातलमें शरीर ग्रहण करनेपर वैकुण्ठनाथ भी पञ्चपाण्डवके सहकारी हो आविर्भूत हुए थे। उन्होंने जाकर दुष्टका निग्रह, शिष्टकी रक्षा की थी। पाण्डुपुत्रगणने यथाक्रमसे सुखके बाद दुःख, दुःखके बाद सुख भोग किया था। किसी समय इन वीरगणके ज्ञातिकृत विपदमें पड़ बनवासी होनेपर, उनलोगोंकी सहधर्मिणी धर्मपरायणा पाञ्चालतनयाने पतिगणकी विपदसे व्यथिता हो सूर्यकी उपासना की थी। सूर्यदेवने द्रौपदीकी आराधनासे सन्तुष्ट हो उन्हें एक हाता और अच्छादन सहित एक थाली देकर कहा था, कि हे सुभगे ! जबतक तुम भोजन न करोगी, तबतक कितने ही व्यक्ति क्षुधित होकर क्यों न आवें, सभी इस थालीके अन्नसे तृप्ति पावेंगे ; इससे इच्छाधीन वस्तु मिल सकेगी। किन्तु तुम्हारे भोजनके बाद यह सरसद्रव्य परिपूर्ण थाली शून्य हो जायगी। हे मुनिवर ! सूर्यदेवने काशीमें द्रौपदीको ऐसा वर देनेपर फिर एक वर दिया ! सूर्यने कहा, विश्वेश्वरकी दक्षिण ओर तुम रहोगी, तुम्हारे सामने ही मेरा अधिष्ठान होगा। यहां मेरा भजन करनेसे जीव

कभी क्षुधासे पीड़ित नहीं होते। हे रतिपरायणे! प्रभु विश्वनाथके सन्तुष्ट होनेपर मैंने उनसे जो वर पाया है, वह सुनो। विश्वेश्वरने कहा था, कि हे दिवाकर! जो व्यक्ति पहले तुम्हारी पूजाकर मेरा दर्शन करेंगे, तुम उनका सब दुःख दूर करोगी हे द्रौपदि! विश्वेश्वरसे यह वर पानेकी अवधिसे मैं काशीवासी जीवगणका पापनाश करता हूं; यहां मैं जिन लोगों द्वारा पूजित होता हूं, वह मुझसे पूर्णमनोरथ होते हैं। विश्वेश्वरके दक्षिणभागमें मेरे और दण्डपाणिके निकट तुम रहोगी। काशीस्थ जो पुरुष या स्त्री श्रद्धाके साथ तुम्हारी मूर्त्तिकी पूजा करेंगे, वह कभी प्रियजन-विरह जन्य दुःख नहीं पावेंगे। हे निष्पापे; धर्म्मशीले! काशीमें तुम्हारा दर्शन करनेसे लोगोंकी व्याधि क्षुधा या तृष्णासम्भूत दारुण कष्ट दूर होगा। भक्ताभीष्टप्रदाता भगवान दिवाकर, पाञ्चालराजपुत्रीको इस तरह वरदानसे आश्वस्ताकर स्वयं शिवोपासनामें आसक्त हुए; तब द्रौपदी भी कृतार्थ हो पतिगणके पास गई। इस द्रौपदी दिवाकरसम्वादको भक्तिके साथ सुननेसे, लोगोंका सब पाप विनष्ट होता है। कार्त्तिकेय कहा, हे कुम्भयोने! तुमने इस द्रौपदादित्यकी महिमा सुनी; अब मयूखादित्यका माहात्म्य वर्णन करता हूं, सुनो। पूर्व्वकालमें त्रिभुवनख्यात पञ्चनद तीर्थमें देव दिवाकरने "गभस्तीश्वर" नामसे एक भक्तवाञ्छाकल्पतरु शिवलिङ्ग और मङ्गलागौरी नामसे सर्व्वमङ्गलदायनी दुर्गाकी मूर्त्ति प्रतिष्ठाकर वहां दारुणतपस्या की थी। हे मुनिवर! स्वभावतेजसे जगत्तपन तपनदेव, देवमानसे लक्षवर्षतक कैलाशनाथके उद्देशसे कठोर तपस्याकर, तपस्याके तेजसे शतगुण तेजस्वी हो गये। उनकी अग्निमय किरणासे स्वर्गमर्त्त्यका मध्यदेश एकान्त पीड़ित होने लगा। देवतालोगोंने पतङ्गदेवके तेजसे सामान्य पतङ्गकी तरह दग्ध होनेके भयसे गगनपथसे आना जाना छोड़ दिया। जैसे स्फुटित कदम्बफूलकी कलिकाचय हो परिदृष्ट होती है, उसी तरह सूर्य्यदेवके किरणजालसे आहतदृष्टि लोग उनकी मूर्त्ति नहीं देख पाते थे। तब सूर्य्यका तेज और तपःसञ्चय देखकर सभीका अन्तर भयसे कम्पित होने लगा। "वेदने सूर्य्यको जगतकी आत्मा कहकर निर्द्देश किया है, वह आत्मा ही यदि देहको तापित करें, तो दूसरा कौन रक्षामें समर्थ होगा? यह सूर्य्य ही जगतके नेत्र हैं, यह सूर्य्य ही जगत्‌की आत्मा हैं; इसीलिये प्रतिदिन प्रभातकालमें यह उठकर मृतप्राय जगत्‌को जागरित करते हैं। प्रतिदिन उठकर इनके करजाल विस्तार करनेपर, अन्धकार कूपमें निपतित जीवगण चारो ओर देखते हैं और इनकी

उठने होसे हमलोग उठते हैं और इनके अस्त हो जानेपर हमलोग भी अस्तमित होते हैं; सुतरां सूर्य्य ही हमलोगोंके उदयानुदयके एकमात्र कारण हैं।" विश्व-स्थित कुल प्राणियोंका ऐसा आर्त्तपवाक्य सुनकर, विश्वरूप शम्भुने सूर्य्यको वर देनेके लिये आगमन किया; उस समय दिवाकर वाह्यज्ञानशून्य एकाग्रचित्तसे तपस्या कर रहे थे। भक्तवत्सल उमापतिने उन्हें देख विस्मित और प्रसन्न हो कहा, "हे तेजोराशि सूर्य्य, तपस्यासे विरत हो मुझसे वर प्रार्थना करो।" यह बात दो तीन बार कहनेपर भी ध्यानमग्न सूर्य्यके कर्ण-कुहरमें वह प्रविष्ट न हुई; तब शिवने उनका स्थाणुभाव जानकर सुधास्रावी करतल द्वारा उन्हें स्पर्श किया। उससे जैसे पद्मिनी सूर्य्य-कर स्पर्शसे विकसित होती है और जैसे अनावृष्टिप्रभावसे सूखा तृण वृष्टिका जल पानेपर अङ्कुरित होता है, उसी तरह सूर्य्य भी शिव पाणिस्पर्शसे वाह्यज्ञान प्राप्त और विगतताप पाकर, सामने अभीष्टदेव त्रिनयनको देख, साष्टाङ्गसे प्रणामकर, स्तव करने लगे। सूर्य्यने कहा, हे देवदेव! हे जगदीश्वर! हे विभो! हे भर्ग,! हे भव! हे शशाङ्क-शेखर! हे भूतनाथ! आप जीवोंका भवभय दूर करते हैं। हे चन्द्रचूड़! हे मृड़! आप लोगोंका अभीष्ट पूर्ण करते हैं। हे धूर्जटि! हे हर! हे त्रिनयन! आपने दक्षयज्ञ ध्वंस किया था। हे शान्त! हे शाश्वत! हे शिवेश! हे शिव! हे नीललोहित! हे विरूपाक्ष! हे व्योम-केश! हे पशुपाशनाशन! हे वामदेव! हे शितिकण्ठ! हे शूलिन! हे महेश्वर! हे त्र्यम्बक! हे ईश्वर! हे त्राणकारिन्! हे फणिभूषण! हे कामकृत्! हे पशुपति! हे त्रयीमय! हे त्रिनयन! आपने त्रिपुरा-सुरको विनाश किया था। हे कालकूट-पायिन्! आप अन्तकके भी अन्तक हैं। हे शर्व्वरी रहित! हे शर्व्व! हे सर्व्वग! हे स्वर्गमार्ग! हे मोक्षप्रद! हे सुखदा-यिन! हे कपर्द्दिन! हे शङ्कर! हे उग्र! हे गिरिराजपते! हे अन्धकजित्! हे विश्वनाथ! हे विश्वरूप! हे सर्व्वेश! ब्रह्मा, विष्णु और वेद आपकी महिमाको जानकर सदा स्तव करते हैं। हे पर! हे रूपहीन! हे ब्रह्मन! हे अकुटिल! हे सुधाप्रद! हे दूरग! आप वाक्य और मनके अगोचर हैं; आपको मैं बार बार प्रणाम करता हूं। दिवाकर महादेवका प्रदक्षिणाकर इस तरह स्तव करते हुए प्रमुदित मानससे शिवकी अर्द्धाङ्गरूपिणी पार्व्वतीका स्तव करने लगे। रविने कहा, हे देवि! जिस व्यक्तिके भालदेशमें आपके पादपद्मका रेणुचय संलग्न होता है, जन्मान्तरमें भी उसका ललाटस्थल चन्द्र-कलासे भूषित रहता है। हे मङ्गले! आप सब मङ्गलके आलय और सब पाप-

रूप तुलाराशि दग्ध करनेमें वह्निस्वरूपा हैं; आपने दानवदल दलन कर, विश्वकी रक्षा की है; हे विश्वमयी! आप विश्वका सृजन, पालन और संहार करती हैं। आपकी नामकीर्त्तनरूप पुण्यनदी, जीवोंके पापरूप वृक्षनिचयको हरण करती हैं। हे मातः भवानि! संसारमें एक मात्र आपकी शरणागत होनेसे, लोगोंका भव-भय दूर होता है; जिसपर आप कृपा-दृष्टि निक्षेप करती हैं, संसारमें वही धन्य और मान्य होते हैं। भक्तकी मोक्षदात्री स्वप्राकाशा काशीस्था, आपको जो शुद्धमति स्मरण करते हैं, भगवान् महादेव भी स्वयं उस मोक्षरक्षाके उपायज्ञ व्यक्तिको स्मरण करते रहते हैं। हे मातः! जिनके हृत-पद्ममें आपके चरणयुगल अवस्थित होते हैं, समस्त जगत् उनके करस्थ है। हे गौरि! जो व्यक्ति आपका नाम जपते हैं, उनके घरमें अष्टविध सिद्धि सदा अवस्थान करती हैं। हे देवि! आप ही देवमाता प्रणवरूपिणी हैं, द्विजातिगणकी सर्व्वाभीष्ट-दायिनी गायत्री हैं; आप ही व्याहृतित्रय हैं; आप ही सब कर्मसाधिका देवगण तृप्तिकारिणी स्वाहा और पितृगण तृप्ति-जनिका स्वधा हैं। आप महादेवकी गौरी, ब्रह्माकी सावित्री, विष्णुकी लक्ष्मी और काशीमें मोक्षलक्ष्मी होकर विराज रही हैं। हे मातः! आप मेरी शरण्या हों। सूर्य्यदेवके इस मङ्गलाष्टक नामक स्तोत्र द्वारा शिवार्द्धाङ्गरूपिणी दुर्गाका स्तवकर गौरी और शिवको बार बार प्रणाम करते हुए उनके पास मौनभाव धर अवस्थान करनेपर, देवदेव कहने लगे, हे मतिमन् सूर्य्य! और तपस्याका प्रयोजन नहीं है, मैं प्रसन्न हुआ हूं; तुम मेरे नेत्रस्थानीय होकर विश्वसंसार अवलोकन करो। हे सूर्य्य! तुम मेरी ही मूर्त्ति हो, इसलिये तुम समस्त तेजके आधार और सर्व्वज्ञ होकर, सब जगह विचरण करते हुए सब भक्तजनोंका दुःख निवारण करो। तुमने जिस स्तोत्र द्वारा मेरा स्तव किया, उस स्तवका पाठ जो लोग करेंगे, उन्हें मेरी निश्चला भक्ति होगी और पार्व्वतीका जो मङ्गलाष्टक नामक स्तव किया, उसके द्वारा पार्व्वतीका स्तव करनेसे, जीवका सब अमङ्गल दूर होगा। यह मेरा चतुःषष्टि नामक स्तोत्र और दुर्गाका मङ्गलाष्टक स्तोत्र अति श्रेष्ठ, पवित्र और सर्व्वपापविनाशन है। प्रतिदिन त्रिसन्ध्याको विशुद्ध मानससे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे, मानव दूर देशस्थ होकर भी दुर्लभ काशी पा सकेंगे। जो मनुष्य प्रतिदिन इन दोनो स्तोत्रका पाठ करते, वह निष्पाप होते हैं; उनके शरीरमें किसी तरहका पाप आश्रय नहीं करने पाता। त्रिसन्ध्यामें यह स्तोत्र जिनके कण्ठसे निःसृत होता है, उन्हें दूसरे किसी स्तोत्रका प्रयोजन नहीं होता। काशीधाममें मोक्षाभिलाषी व्यक्तिगण

दूसरे सब स्तोत्र परित्यागकर, यत्नके साथ इन दो स्तोत्रका पाठ करेंगी ; इससे मोक्ष-धाम उनके करस्थ होता है। यह विश्व-संसार भ्रम होका प्रपञ्च है, सुतरां यह दोनो स्तोत्र पढ़नेसे, जीवको फिर प्रपञ्चमें आना नहीं पड़ता। इस स्तवका पाठ करनेसे, मानव पुत्र पौत्र और धनसे समृद्धिभागी हो, अन्तकालमें मुक्त होते हैं, हे ग्रहाधिप ; जो व्यक्ति तुम्हारे प्रतिष्ठित इन गभस्तीश्वर नामक लिङ्गकी पूजा करेंगी, उन्हें सर्व्वसिद्धि मिलेगी। यह लिङ्ग, पद्मकान्ति-गभस्तिमाला द्वारा तुम्हारे पूजित हुए हैं इसलिये, गभस्तीश्वर नामसे विख्यात होंगे। मनुष्य पञ्चनद तीर्थमें स्नान-कर इन लिङ्गकी पूजा करनेसे, निष्पाप हो फिर जठरयातना नहीं भोगते। जो नारी या नर चैत्र मासकी शुक्ल तृतीयाको उपवासी रह निशीथकालमें वस्त्रलङ्का-रादि विविध उपचार द्वारा इन मङ्गला गौरीकी पूजा करेंगी ; फिर उसी रात गीतवाद्यके अनुष्ठानपूर्व्वक जागरणकर, प्रभातमें द्वादश कुमारीको स्वस्त्राकर उन सबको परमान्नादि भोजन करावेंगी और दक्षिणा प्रदानकर और व्यक्तिगणको भी सदक्षिणा भोजन करावेंगी, फिर "जातवेदस" इत्यादि मन्त्रपाठसे सतिल घृत द्वारा अष्टो-त्तर शत आहुति प्रदान करेंगी ; फिर किसी एक गृहस्थको गोमिथुन दक्षिणा दे, श्रद्धाके साथ द्विजदम्पतीको भूषणालङ्कृतकर, "मङ्गला और महेश्वर प्रसन्न हों" यह मन्त्र उच्चारणकर ब्राह्मण भोजनके उप-रान्त दूसरे दिन प्रातःकालको पारण करती हैं, उनका कभी असौभाग्य और दारिद्र्य उपस्थित नहीं होता, कभी उन्हें अपत्यविरह यातना भोगना नहीं पड़ती ; सदा ही वह विविध भोगसुख अनुभव करती हैं। स्त्री विधवा नहीं होतीं; पुरुष स्त्रीवियोगी नहीं होते। पापराशि दूर हो पुण्यसमूह आकर उनका आश्रय करते हैं। इस मङ्ग-लाव्रतके अनुष्ठानसे वन्ध्या भी पुत्रवती और कुरूप भी सुन्दर होती हैं। कुमारी यह व्रत करके रूपवान् और गुणवान् पुत्र पाती हैं और कुमार यह व्रत करके, उत्कृष्ट स्त्रीरत्न पाते हैं। जगत्में जितने अर्थकर और अभीष्टप्रद व्रत हैं; वह कोई भी मङ्गलाव्रतके समान नहीं हैं। काशीस्थ व्यक्तिमात्रको ही चैत्रमासकी शुक्लातृती-याको इनकी वार्षिकी यात्रा करना उचित है। हे दिनमणे! और एक बात सुनो। तपस्याके समय आकाशपथमें तुम्हारा मयूखचय ही दिखाई दिया था, देह नहीं दिखाई दी, इसलिये आजसे तुम्हारा नाम मयूखादित्य हुआ। तुम्हारी अर्चनासे लोगोंको व्याधिभय नहीं रहता और रवि-वारमें इस जगह तुम्हारा दर्शन करनेसे लोग दरिद्र नहीं होते। महादेव मयूखादित्यको इसतरह वर देकर, अन्तर्हित हुए; सूर्य्यने भी वहीं अवस्थान किया।

द्रौपदादित्यके साथ इन मयूखादित्यका पवित्र इतिहास सुननेसे जीवको नरकभय नहीं रहता ।

एकोनपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

पञ्चाश अध्याय ।

गरुडेश्वर और खखोल्कादित्य वृत्तान्त ।

कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने ! काशीमें अन्यान्य जो सब आदित्य हैं मैं सादर उनके विषय वर्णन करता हूं, सुनो । विश्वेश्वरके उत्तरभागमें खखोल्क नामक आदित्य विराज रहे हैं ; उनकी उपासना करनेसे लोग निर्व्याधि होते हैं । इनका खखोल्क नाम होनेका कारण कहता हूं, अवहित हो सुनो । पहले दक्ष प्रजापतिकी कद्रु और विनता नाम्नी कन्याद्वयसे, मरीचिसम्भव कश्यपने विवाह किया । एक दिन सपत्नीद्वय क्रीड़ा कौतुक करती करती, आपसमें बातचीत करने लगीं । कद्रु ने कहा, भगिनि ! विनते ! आकाशमण्डलमें सर्वत्र ही तुम गमन करती हो ; तुमसे वहांका एक प्रश्न करती हूं ; यदि वह जानती हो, तो मुझसे कहो । यह जो दिनमणि गगनमें विचरण करते हैं, सुनती हूं, इनके रथमें उच्चैःश्रवा नामक अश्व है । तुम इस समय कह सकती हो, कि उसका वर्ण श्याम है, अथवा श्वेत ? किन्तु इस विषयमें तुम पणबन्धपूर्वक एकपक्ष अवलम्बन करो, मैं भी उस प्रतिज्ञाको स्वीकारकर दूसरेपक्षका आश्रय करूंगी । तुम्हारी अभिरुचि अनुसार ही पण रखा हो । इस तरहकी कोई क्रीड़ा न करनेसे दिन अतिवाहन नहीं होता । विनताने कहा, हे कल्याणि ! कद्रु ! इस विषयमें कोई प्रतिज्ञा करनेका प्रयोजन नहीं ; मैं बिना प्रतिज्ञाके ही स्वीकृत हूं । इस विषयमें हम दोनोमें कोई जय पाकर भी दूसरेके पराजयसे सुखलाभ नहीं कर सकतीं ; कारण एकके जयी होनेसे दूसरेको क्रोध उत्पन्न होता है । ऐसा समझकर, परस्पर स्नेहवान् व्यक्ति आपसमें किसी तरहकी प्रतिज्ञा नहीं करती । कद्रू ने कहा, हे भगिनि ! विनते ! यह अति तुच्छ क्रीड़ा है, इसमें क्रोधका कोई कारण नहीं दिखाई देता ; सामान्य क्रीड़ामें भी पण धार्य्य करना, उसका एक व्यवहार मात्र है । विनताने कहा, हे शुभे ! जो तुम्हारा अभिमत हो, वही करो । विनताकी बात सुनकर, कुटिलमति कद्रु ने कहा, "इस क्रीड़ामें जो पराजिता हो, वह पराजयकारिणीकी दासी होगी" इस तरहकी प्रतिज्ञा ही स्थिर हुई और हमारी चिरसङ्गिनी सखियां इस प्रतिज्ञाकी साक्षी रहें । सर्पिणी कद्रु और पक्षिणी विनताकी ऐसी प्रतिज्ञा होनेपर, कद्रु ने कहा, मैं कहती हूं, कि 'उच्चैःश्रवा कर्बुरवर्ण है ।' विनताने कहा, मेरी जान 'उच्चैःश्रवा वर्ण श्वेत है'

ऐसा कहकर, किसकी बात सच है, उसकी परीक्षाके लिये किसी निर्दिष्ट समयमें किसी ऊंची जगह जाकर दोनो ही देखिंगी यह स्थिरकर, दोनो अपने अपने स्थानमें लौट आईं । इधर कद्रूने अपने घरमें आकर अपने सन्तान सर्पगणको बुलाकर, आदेश दिया, कि हे पुत्रगण ! सुरासुरगणोंने मन्दराचलकी मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथनकर जिस अश्वरत्नको पाया था, सम्प्रति मेरे आदेशसे तुमलोग उन सूर्यके अश्व उच्चैःश्रवाके पास जाओ । मैं निश्चय जानती हूं, कि कार्य्यमात्रसे ही कारणगुण होता है ; सुतरां इसमें सन्देह नहीं, कि शुभ्रसलिल क्षीरसमुद्रसम्भूत उच्चैःश्रवा शुभ्रवर्ण है । तुमलोग वहां जाकर श्वेतवर्ण अश्वको कृष्णवर्ण कर डालो । तुमलोग उसकी पूंछके पास रहकर, असित कुन्तलकी तरह शोभा पाओगे और तुमलोगोंके विषफुत्कार द्वारा उसके शरीरका सब लोम ही कृष्णवर्ण होगा । कुरूप कद्रु-सन्तानगण माताकी ऐसी बात सुनकर, जननीका अभिवादनकर कहने लगी, हे मातः ! हमलोग आपका बुलाना सुनकर समझे "हमलोगोंकी जननी कोई मिष्टखाद्य लेकर बुलाती हैं," यही सोचकर, सब लोग खेल छोड़कर शीघ्र इस जगह आये हैं ; किन्तु मिष्ठान्न कहां ! आज उसके विनिमयसे दुरन्त आदेश पाया । यह विषसे भी अधिकतर कड़वा ज्ञान पड़ता है । हे जननि ! जो कभी हमलोगोंके चिन्तापथमें नहीं आया, आपके प्रसादसे आज वही हुआ । हे मातः ! आप यदि कोई खाद्यवस्तु प्रदान करें, तो उससे हमलोग परम आनन्दित होंगे ; किन्तु ऐसी आज्ञा हमलोगोंके प्रति न करिये । खलबुद्धि सर्पोंने इस तरह मातृनिदेश अवहेला किया । स्कन्दने कहा हे मुनिवर ! इन सर्पगणकी तरह जिनकी बुद्धि कुटिला, हृदय कापट्यपूर्ण और चित्त सदा ही परछिद्रमें प्रवेशके लिये व्यस्त होता है ; उनके द्वारा ही जनकजननीगण अवज्ञात हो लज्जा पाती हैं । जो वह-ज्ञारी हो पितामाताकी बात अतिक्रम करते हैं, वह थोड़े दिनमें ही अधोगति पाते हैं । तब कद्रुने तनयगणका दुर्व्यवहार देखकर, उन सबके प्रति कुपिता हो, उनलोगोंके अपराधकी शान्तिके लिये, यह शाप प्रदान किया, कि "हे दुष्टमतिगण ! तुमलोग मेरे वाक्य उल्लङ्घनजनित पापसे गरुड़के भक्ष्य होगे और तुम्हारी नारीगण सद्योजात अपने सन्तानगणको ही भक्षण करेंगी ।" सर्पगण जननीके इस शापानलसे भीत हो, प्रायः सब पाताल भाग गये, अवशिष्ट कोई कोई मातृशापसे प्राणरक्षा करनेकी आशासे, उनकी आज्ञापालनके लिये उद्योगी हुए । उन लोगोंने आकाशपथमें उड़कर, उच्चैःश्रवाकी पूंछका आश्रयकर, फुत्कार करते हुए, तीव्रविष-

सम्पर्कसे उस अण्डका रूपान्तर सम्पादन किया। वहां सूर्य्यदेव भी उन मातृ आज्ञा पालनकारियोंको अपनी प्रखर किरणोंसे क्लेश देनेमें किसी तरह समर्थ नहीं हुए। इसी समय कद्रु ने विनताकी पीठपर चढ़कर नभस्तल भूषित करती अति समुच्चप्रदेशमें चढ़कर सहस्र किरण-शाली सूर्य्यका प्रखर तेज न सहकर, विनताको सम्बोधनकर कहा, हे भगिनि। तुम मुझे छोड़ दो, मेरी देह, तपनतापसे अत्यन्त सन्तप्त हो रही है, तुम अकेली ही जाओ, मैं नहीं जा सकूंगी। तुम स्वभावसे पतङ्गी हो, यह सूर्य्य भी पतङ्ग हैं; सुतरां तुम अनायास ऊर्द्धमुखसे जाती हो, तुम्हें कोई क्लेश ही नहीं होता। यह सूर्य्य आकाशरूप सरोवरके हंसस्वरूप हैं और तुम भी हंसगामिनी हो, इसीलिये सूर्य्यकी प्रचण्ड किरणोंसे तुम्हें किसी तरह-पीड़ा नहीं होती। इस तरह कद्रुके बारबार कहनेपर विनता और ऊपर चढ़ने लगी। यह देखकर कद्रु अति कातरा हो, फिर कहने लगीं, हे विनते! हे भगिनि! आओ हमलोग यहांसे चलें; मैं विनय कर कहती हूं, मेरी रक्षा करो; मैं नहीं सह सकती। तुम क्यों ऐसा करती हो? यदि तुम मेरी रक्षा करोगी, तो मैं जबतक बचूंगी, तबतक तुम्हारी दासी हो यावज्जीवन प्रतिपालन करूंगी। हे सखि! मेरे माथेपर निरन्तर अङ्गार बरस-रहे हैं। इसतरह कहनेमें भयसे कण्ठकी जड़ता होनेसे, ऐसा स्फुट वाक्य उच्चारण करके, कि खखोल्क पड़ता है, कद्रु विनताकी पीठपर मूर्च्छिता हो गईं। उस समय कद्रुके मुंहसे भयजाड्यनिबन्धन खखोल्ककी बात निकली थी, इसलिये विनता सूर्य्यका खखोल्क नाम रख बहुत तरहसे स्तुति करने लगीं। भगवान् सहस्ररश्मिने विनताके स्तवसे प्रसन्न हो, कुछ कालके लिये अपने किरणोंकी उष्णता समेट ली। फिर कद्रु और विनता सूर्य्यके रथमें आवद्ध उस उच्चैःश्रवाका कृष्णवर्ण शरीर देख सकीं। सत्यवादिनी जगन्मान्या विनताने, उसे दूरहीसे देखकर, कद्रुसे कहा, हे भगिनि! उच्चैःश्रवा चन्द्रकिरणोंकी तरह धवल होनेपर भी आज मेरे अदृष्टसे उसका वर्णविपर्य्यय हुआ है; तुम्हारी ही जय हुई! भाग्य ही सर्व्वश्रेष्ठ होनेकी वजह कभी कपटीकी जय और अकपटीकी पराजय होती है। इसतरह विनीतभावसे कहकर विनता अपने घर लौट यथाविधानसे कद्रुकी दासी होकर रहीं। इसतरह दासीभावसे कुछ दिन बीतनेपर, एक दिन वैनतेय गरुड़ने अपनी जननी विनताको अश्रुपूर्णनयना और मलिनकान्ति देखकर कहा, हे मातः! नित्य प्रभात होते ही आप कहां जाती हैं? सारा दिन बिताकर सन्ध्या समय जब घरमें आती हैं, तो आपकी देहकान्ति मलिन

और हृदय अतिविषन्न देखता हूं और हीनसन्तति या पतिविमानिताकी तरह आप सदा ही दीर्घनिश्वास त्याग किया करती हैं; हे मातः! यह कहिये, कि आपको काहेका दुःख है। कालके भी भय विधाता मेरे जैसा पुत्र रहते भी आप किसलिये सदा रोया करती हैं? हे जननि! सच्चरित्रा स्त्रीगण कभी दीर्घ अशुभ भोग नहीं करतीं और जो सन्तान जीवित रहकर जननीका दुःख दूर नहीं करते, उनके जीवनको धिक् है और उनको मातृगणको बन्ध्या होना ही अच्छा था। मातृभक्त गरुड़की ऐसी बात सुनकर, विनता प्रमुदित हृदयसे कहने लगीं, वत्स गरुड़! मैं कठिनहृदया कद्रूकी दासी हो उसे और उसके सन्तानगणको पीठपर चढ़ाकर, प्रतिदिन नाना स्थानमें विचरण करती हूं। वह लोग जहां ले जानेकी आज्ञा देते हैं, मैं दीनभावसे उन्हें वहीं ले जाती हूं। गरुड़ने कहा, हे मातः! आप कश्यपकी भार्य्या, दक्षप्रजापतिकी कन्या और स्वयं निष्पापा होकर भी क्यों ऐसे भावसे सपत्नीकी दासी हुई? गरुड़की ऐसी बात सुनकर विनताने सूर्य्यके अश्व देखनेकी अवधिसे अपनी प्रतिज्ञानुयायी ऐसी दासीत्वप्राप्ति-विवरण सम्यक्-रूपसे उनपर प्रकाश किया। तब गरुड़ने कहा, हे जननि! आप उन दुर्वृत्तोंके पास जाकर पूछिये, कि "इस जगतमें तुम लोगोंको जो एकान्त दुर्लभ है, ऐसी चाहे किसी वस्तुका अभिलाष तुम लोगोंको हो, वह वस्तु देनेसे तुम लोग मेरा दासीत्व मोचन करोगी या नहीं?" गरुड़की ऐसी बात सुनकर कद्रू और उनके सन्तानोंके पास जा विनताके यह प्रस्ताव करनेपर नागोंने आपसमें परामर्शकर आनन्दमानससे उनसे कहा, यदि तुम मेरी माताको दास्यसे मुक्ति पानेकी अभिलाषिणी हो, तो स्वर्गसे केवल एकमात्र अमृत लाकर देनेसे हमलोग तुम्हारा दासीत्व मोचन कर देंगे; नहीं तो इसी भावसे ही रहोगी। विनताने उन लोगोंकी बातसे ही असम्मति प्रकाशकर कद्रूसे बातचीत कर अपने घर आ गरुड़से सब बातें कहीं। गरुड़ने चिन्ताकुला जननीसे कहा, हे मातः! आप समझ लें, कि मैं अमृत ले आया, मेरा असाध्य कुछ भी नहीं है; इस समय मुझे कुछ खानेको दीजिये। यह सुनकर विनताने पुलकित-देहा हो कहा, वत्स गरुड़! तुम्हारा मङ्गल हो और समुद्र किनारे जाकर वहांके मत्स्यघाती निषादगणको भक्षणकर बहुतसे जीवोंका उपकार साधन करो। जो पराये का प्राण नष्टकर अपने प्राणकी रक्षा करते हैं, उन दुर्वृत्तोंका शासन करनेसे परममङ्गलमय विधाताका अभिप्रेत कार्य्य करना होगा और स्वयं सकल मङ्गल पा सकोगे। जो जीव हिंसा करते हैं,

उनका विनाश करनेसे स्वर्ग मिलता है; कारण जीवघातियोंके विनाशसे कितने ही जीव मृत्युमुखसे रक्षित होते हैं। यदि उन निषादगणमें कोई ब्राह्मण हों, तो तत्क्षणात उन्हें परित्याग करना; उन्हें कभी भक्षण न करना। गरुड़ने कहा, जननि! आपने आदेश किया कि, "यदि उनमेंसे कोई ब्राह्मण दिखाई दें, तो उन्हें भक्षण न करना"; किन्तु किस उपायसे मैं उन लोगोंमेंसे ब्राह्मणकी पहचान सकूंगा? विनताने कहा, हे वत्स! जिनके गलेमें यज्ञसूत्र हो; जो सदा ही निर्म्मल उत्तरीय वस्त्र और धौत अधोवास धारण करते हैं; जिनके ललाटमें तिलकशोभित हो; जिनके हाथमें कुशकी अंगूठी हो, कटिमें कुशमयी मेखला और मस्तकमें ग्रन्थियुक्त शिखा देखो; उनको ही ब्राह्मण समझना। या वेदत्रयके अन्तर्गत एक मन्त्र भी जिनके कण्ठसे उच्चारित हो और जो गायत्रीके सिवा दूसरे मन्त्रकी उपासना नहीं करते, उनको भी ब्राह्मण ही समझना। गरुड़ने कहा, हे जननि! जो ब्राह्मण सदा पापचारी निषादगणमें रहते हैं, उनमें ब्राह्मणत्वपरिचायक किसी चिह्नके रहनेकी सम्भावना नहीं, तब कोई दूसरा ब्राह्मणत्वज्ञापक लक्षण निर्द्देश करिये, जिससे वह सब ब्राह्मण भी हों तो यह देखकर ब्राह्मणके कण्ठगत होनेपर भी परित्याग कर सकूंगा। तनयकी ऐसी बात सुनकर विनताने उत्तर दिया, वत्स! जो कण्ठगत हो तुम्हारा कण्ठ ज्वलितखदिराङ्गकी तरह दग्ध करें, उनको ही ब्राह्मण समझकर परित्याग करना; कारण जात्याचाररहित ब्राह्मणको भी विनाश करनेसे विनाशकका, देश, कुल, ऐश्वर्य्य और क्रमशः शरीर भी क्षय होता है। गरुड़, मातृमुखसे ब्राह्मणविज्ञापक चिह्न पहचानकर उनके चरणमें साष्टाङ्ग प्रणतिपूर्व्वक उनका आशीर्व्वाद शिरोधार्य्यकर शीघ्र आकाशपथमें उड़े। कुछ क्षण जानेपर ही उन्होंने दूरसे उन मत्स्यघाती निषादगणको देखा और कम्पितपक्षद्वय द्वारा धूलराशि उत्थापित किया। इससे भूतल और नभस्तल आच्छादितकर सागरतटमें उपविष्ट हो, निषादकुल उदरसात् करनेके लिये उन्होंने मुंह पसार दिया। निषादगण पक्षीके पक्षकम्पनसे दिङ्मण्डल धूलिसमाच्छन्न और वात्याकुल देख भयसे इधर उधर भागने लगी; किन्तु वहलोग गरुड़के कण्ठदेशको ही भागनेकी सुगम राह समझ उसमें ही प्रवेश करने लगी। उनमें एक निषादसंस्पर्शी आचारहीन ब्राह्मणके प्रविष्ट होनेसे गरुड़के कण्ठमें अग्निदाह उपस्थित हुई। तब गरुड़ने पूर्व्वप्रविष्ट निषादगणको भक्षणकर उस अग्निकी तरह दाहकारीको ब्राह्मण समझ माताकी बात सोचकर उन्हें उगल दिया और उन उगले हुए व्यक्तिको देखकर कहा, हे मत्कण्ठदाहक! सच

कहिये, कि मैं आपको कौन जाति समझूं। गरुड़के ब्राह्मणसे पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया, मैं ब्राह्मण हूं, अपनी जातिको ही मात्र उपजीविकाकर इस निषादग्राममें रहता हूं। यह सुनकर पक्षिराज गरुड़ उन्हें दूरनिक्षेपकर उन सब मत्स्यघातकोंको निःशेषकर वायुकी तरह वेगधारणकर अन्तरीक्षमें उड़े। उस समय देवगण, स्वर्गकी ओर धावमान महातेजस्वी गरुड़का पर्व्वतप्रमाण देहविस्तार और उनके तेजसे समाच्छादित दिङ्मण्डल देखकर, अत्यन्त भयप्रयुक्त सब ही अपना अपना बल और अस्त्र सज्जितकर अपने अपने वाहनपर अधिरूढ़ हो, अग्रसर हुए और महामहिम विशालकाय पक्षिराज गरुड़को स्वर्गकी ओर आते देख सबके ही मनमें ऐसा होने लगा, कि यह कुटिलगामी प्रदीप्तपदार्थ कभी सूर्य्य, अग्नि या विद्युत नहीं है; दैत्योंका ऐसा तेज किसी तरह सम्भव नहीं और उनका आकार भी इतना विशाल नहीं हो सकता; अथच यह प्रबलवेगसे यहां ही आता है; यह व्यक्ति कौन है? जिसे देखनेकी अवधिसे हमलोगोंको हृत्कम्प और भय उपस्थित हुआ है। देवगण इसतरह तर्क कर रहे थे, इसी अवसरमें महाबलिष्ठ पक्षिवर गरुड़ने ऐसे वेगसे एकबार अपना पक्षद्वय कम्पित किया, कि उस कम्पनजात वायु, समस्त सवाहन देवगणको सामान्य तृणकी तरह ताड़नाकर कहां ले गई, उस समय उसका कोई पता ही न मिला। गरुड़ने अमृतान्वेषी हो नाना स्थानमें भ्रमणकर शेषमें अमृतस्थानका शहदार, समस्त रक्षिगणसे रक्षित है देखकर उनलोगोंकी पराभवकर देखा, अमृतभाण्ड एक कर्त्तरीयन्त्रके भीतर रक्षित है। वह चक्र मनकी तरह वेगसे घूम रहा है और उसके पास एक मशक आनेसे भी खण्ड खण्ड हो जाता है। पक्षिराज गरुड़ने उसे देखकर विचार किया, कि इस समय क्या उपाय करूं? इस चक्रको स्पर्श करना अतिदुरूह है; कारण वायुकी क्षमता भी इसके आगे वृथा होती है। इस जगह बलप्रयोग करना भी वृथा केवल परिश्रम मात्र है। देखता हूं, मेरा इतनी दूर आना सभी निष्फल हुआ; देवतालोग भी कैसे अद्भुतरूपसे सुधाकी रक्षा करते हैं! यदि यथार्थ भगवान् महादेवमें मेरी भक्ति हो, तो अवश्य वह मुझे अमृतसंग्रहके विषयमें सद्बुद्धि प्रदान करेंगे और यदि विश्वनाथकी अपेक्षा भी मातृचरणमें मेरी एकान्त भक्ति रहे तो अवश्य जननीप्रसादसे मेरे विचारमें अमृतसंग्रहका सदुपाय उद्भावित होगा। दयामय विश्वेश्वर जानते हैं, मेरा यह आयास स्वार्थसाधनके लिये नहीं है। जिससे जननी दास्यभावसे मुक्त हो सकें, वही मेरा लक्ष्य है। वृद्ध, पीड़ित, पिता, माता, शिशु सन्तान और

साध्वी भार्य्या, इनलोगोंका चाहे किसी असदुपाय अवलम्बन करके भी पालन करना शास्त्रका अभिप्राय है। महाशय गरुड़ने इसतरह चिन्ताकुल हो एक उपाय उद्भावन किया। उन्होंने अपनी देहके परमाणुकी सहस्रांशका एकांश परिमाणाकर, देहके लघुताप्रयुक्तसे सहज ही उस यन्त्रके भीतर प्रविष्ट हो डरते डरते मनसे वक्रभावसे-देहरक्षापूर्व्वक अति चिप्रहस्तसे यन्त्रमूल खोलकर अमृत ले आकाशमें गमन किया। यह देखकर "अमृत हरण किया" कहकर चिल्लाते हुए देवगण गोलोकविहारीके पास जाकर कहने लगे; हे चक्रपाणि! गरुड़ हमलोगोंको पराजयकर हमलोगोंका प्राणतुल्य अमृतभाण्ड अपहरणकर लिये जाते हैं। तब नारायण कर्त्तृक देवगण आश्वस्त हो शीघ्र गरुड़से युद्ध करनेके लिये अग्रसर हुए। पहले शुम्भासुरके साथ जैसा भगवतीका युद्ध हुआ था, उस समय गरुड़के साथ देवगणका भी वैसा ही एकाहोरात्रव्यापी तुमुल संग्राम होने लगा। इससे भगवान् केशवने गरुड़को ही अधिक बलवत्ता देख सन्तुष्ट हो कहा, हे पक्षिराज! हे विजित देवगण गरुड़! तुम कुशलसे रहो, इस समय किसी वरकी प्रार्थना करो! विष्णुकी ऐसी बात सुनकर गरुड़ने हंसकर विस्मयसे कहा, मैं ही आपके ऊपर सन्तुष्ट हुआ हूं, मुझसे आप कोई भी हो वर ले सकते हैं। तब विष्णुके उस विषयमें सम्मति प्रकाश करनेपर, गरुड़ने कहा, हे विश्वरूप! आपने अभिलाषानुरूप हो वरकी यथिलम्ब प्रार्थना करिये। बुद्धिमान व्यक्ति लोग अलभ्य वस्तु लाभ करके भी द्युतादिमें जयी होनेपर किसी अभीष्टपात्रको वह अर्पण करते हैं, सुतरां आज मैं वही करूंगा। श्रीविष्णुने कहा, हे गरुड़! तुम्हारे जैसे बलवान् अति दुर्लभ हैं, आजसे तुम मेरे वाहन हो; यह मेरा प्रथम वर है; और नागगणको अमृत दिखाकर ही अपनी जननीकी दास्यदशा दूर करो; जिसमें वह लोग अमृत पान न कर पावें, उसका उपाय करके शीघ्र यह अमृत देवगणको ही प्रत्यर्पण करो; यह मेरा द्वितीय वर है। पक्षिराजने इस तरह विष्णुकी प्रार्थनासे सम्मत हो शीघ्र वहांसे प्रस्थान किया। गरुड़ने निमिषके भीतर ही नागगणके पास उपस्थित हो, सुधाभाण्ड प्रदानकर जननीका दासीत्व मोचन किया। तब सर्पसब अमृत पान करनेके उद्योगी हुए। यह देखकर गरुड़ने उनसे कहा, हे भ्रातृगण! तुम लोग पवित्र होकर अमृत पियो; नहीं तो वेनहाये अपवित्र व्यक्तिके स्पर्श करते ही देवरचित यह अमृत अन्तर्हित होते हैं। देखो, सामान्य भोज्यवस्तुसे भी यदि अशुचि स्पर्श होता है, तो उसका रस देवगण द्वारा अपहृत होनेसे उस द्रव्यका नीरसभाव रह जाता

है। गरुड़ अपनी बात समाप्तकर, सर्पोंके आज्ञानुसार कुशके ऊपर सुधापात्र धर जननीको साथ ले चले गये। जिस समय सब सर्प नदीमें स्नान करनेके लिये उतरे, उसी अवकाशमें गोलोकनाथ हरिने वह अमृतभाण्ड अपहरणकर देवताओंको प्रदान किया। इधर सर्पलोग स्नानके बाद अमृतभाण्ड न देखकर, "हाय कैसा धोखा दिया! अमृतभाण्ड किसने चुराया?" इस तरह बार बार आक्षेपकर, "कणामात्र सुधा भी पा सकेंगी।" विचार वह कुशराशि चाटने लगी। इसमें उनके अमृत पानेकी बात कहां। परन्तु सबको ही जीभ कुशधारसे द्विखण्ड हुई। जिन्हें अन्यायसे ली हुई वस्तु भोग करनेकी इच्छा होती है, वह उसको भोग नहीं करने पाते, अथवा भोग होनेसे भी वह परिपाक नहीं होती। गरुड़ने न्यायपथ अवलम्बन करके ही अमृतास्वादन किया था; किन्तु अन्यायपथके पथिक सर्पोंके देखनेसे ही वह अमृत अदृश्य हुआ था। इस तरह दासीत्वमुक्ता विनताने गरुड़से कहा, कि हे वत्स! मैं दासी हुई थी इसलिये जो पाप मेरी देहमें आश्रय करते हैं, मैं उसे दूर करनेके लिये काशीका आश्रय करूंगी; कारण जबतक जीवके हृदयमें मुक्तिदायिनी काशी प्रकाश नहीं होती, तभीतक पापराशि आधिपत्य पाती है। जिस काशीमें रहनेपर विश्वनाथके प्रसादसे जीवोंकी पुनर्जन्मयातना दूर होती है, उस काशीके स्मरणमात्रसे पापध्वंस होगा, इसमें विस्मय क्या है। और वहां विश्वेश्वर चरम समयमें जीवको तारक मन्त्रसे दीक्षित करते हैं, भवसागरसे पार करते हैं। जो विश्वनाथका आश्रयकर स्वकर्म्मसूत्र छेदनेका विचार करते हैं, इस संसारमें उनकी ही काशीके प्रति अचला भक्ति होती है और जिनकी भक्ति काशीके प्रति अचला है, उनको ही 'मनुष्य' कहते दूसरे सब नराकार पशुमात्र हैं। जिनके द्वारा काशी आश्रिता होती हैं, वह सहज ही कालको जीतकर निष्पाप शरीर हो अवस्थान करते हैं और कभी गर्भयातना भोग नहीं करते। सब मङ्गलनिलय देव दुर्लभमानवजन्म काशीका दर्शन न कर वृथा अतिवाहन करना अनुचित है; कारण आनन्दधाम काशीक्षेत्रका दर्शन करनेपर काल, कलि या कर्म्मफल, कोई उसको स्पर्श कर नहीं सकते। काशीमें वरणा या असिकी सेवा करनेसे, फिर गर्भवासक्लेश भोगना नहीं पड़ता। गरुड़ने माताकी ऐसी बात सुनकर पुलकित हो उन्हें प्रणामकर महादेवाधिष्ठित काशीक्षेत्रका दर्शन करनेके लिये उनका जाना स्वीकार किया फिर मातृआदेश-शिरोधार्य्यकर उन्हें ले मुहूर्त्तकालमें ही मोक्षधाम वाराणसीमें आ उपस्थित हुए। वहां शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की और विनताने भी खखोल्क नामक सूर्य्यमूर्त्ति प्रति-

ष्ठितकर दोनोंने ही घोर तपस्यामें मनोनिवेश किया। उस समय उनके प्रतिष्ठित लिङ्गसे आविर्भूत हो भगवान् कैलासनाथने गरुड़की तपस्यासे सन्तोष लाभकर दुर्लभवर प्रदान किया। महादेवने कहा, हे पक्षिराज ! तुम परमज्ञानी और मेरे भक्तोंमें श्रेष्ठ हो; देवताओंके भी अविदित रहस्य तुमसे छिपे नहीं रहेंगे। इन तुम्हारे प्रतिष्ठित गरुड़ेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन स्पर्शन या पूजा करनेसे लोग तत्त्वबोध पा सकेंगे। इस समय जो कहता हूं, सुनो; यह तुम्हारे पक्षमें बड़े हितकी बात है। वह विष्णु मैं ही हूं, मुझे और उनको किसी रूपसे भिन्न न समझना। हे पतगराज ! तुम अपने बलसे असुरोंको भी पराजय कर सकोगे और सदा विष्णुके वाहन हो जगत्में सबके पूजित होगे। अपने भक्त गरुड़को इसतरह वर देकर भगवान् शिव वहां ही अन्तर्हित हुए। इधर वैनतेय भी विष्णुके पास जा उनके वाहन हो जगन्मान्य हुए। काशीस्थ मनुष्योंके पापनाशन महेश्वर ही मूर्त्तिभेद भगवान् खखोल्क नामक आदित्य हैं, विनताका घोर तपश्चरण देखकर उन्होंने उनकी देह निष्पापकर शिवज्ञानसमन्वित किया तबसे विनतादित्य नामसे अभिहित हो काशीवासीका विघ्नसमूह दूर करने लगे। काशीक्षेत्रके पिलपिला तीर्थमें खखोल्कादित्यका दर्शन करनेसे, मानव सब पाप और रोगसे निर्म्मुक्त हो अभीष्ट विषय पाते हैं।

पञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

एकपञ्चाश अध्याय ।

अरुण, वृद्ध केशव, विमल, गङ्गा और यमादित्य वर्णन ।

अगस्त्यने कहा, हे उमा-हृदयानन्दवर्द्धन ! शिवात्मज ! आपसे जो पूछता हूं, उसका उत्तर प्रदान कीजिये। पतिव्रता विनता, दक्षकी कन्या और महर्षि कश्यपकी पत्नी होकर भी किस कर्म्मसूत्रसे दासीत्व-बन्धनमें पड़ी थीं ? स्कन्दने कहा, हे मतिमन् ! वह दीन विनता जिस कारण दासी हुई थीं, वह सुनो। पहले ऋषिवर कश्यपने कद्रुसे शतपुत्र और विनताके गर्भसे उलूक, अरुण और गरुड़ यह तीन पुत्र उत्पादन किये थे। विनताके पुत्रोंमें उलूकको पक्षिराज होनेकी वजह राज्य पानेके पात्र होनेपर भी सब पक्षियोंने परामर्श कर उन्हें निर्गुण बता राजा नहीं बनाया और "उलूक स्वयं दिवान्ध है, उसका क्रूर देखनेसे और वक्रनखसे हम सभी उद्वेजित होते हैं" इसतरह निन्दाकर वह सब किसीको भी प्रभु न बनाकर उसी अवधिसे इधर उधर घूमने लगे। विनताने ज्येष्ठसन्तान कौशिककी ऐसी दुर्दशा देख पुत्र देखनेकी वासनासे मध्यम अण्डा फोड़ा, यह अण्डा उस समयसे अष्टशत वर्षमात्र

प्रसूत हुआ था, और दो सौ वर्ष पूरा होनेपर वह यथोचित कालमें ही प्रस्फुटित होता ; किन्तु विनताने प्रबल औत्सुक्यसे ही कच्ची अवस्थामें उसे विदारितकर देखा, उसमें एक शिशु है ; उसके जङ्घके ऊपरी भागके अङ्ग प्रत्यङ्ग सब हुए थे उस अर्द्धनिस्पन्द देह शिशुने निष्फल क्रोधसे मुख रक्तवर्णकर जननीको अभिसम्पात दिया। हे मातः! आपने सपत्नीकी गोदमें उनके पुत्रगणको स्वच्छन्दसे क्रीड़ा करते देख ईर्ष्यासे मेरा सब अवयव पूर्ण न होनेपर ही इस अण्डेको दो खण्ड किया है। हे कल्याणि! इसमें सन्देह नहीं, कि आप इस पापसे सपत्नीपुत्रगणकी दासी होकर रहेंगी। पुत्रशापसे माता विनताने सविनय कहा, हे वत्स! कहो मैं किस उपाय शापविमुक्ता हूंगी। अरुणने कहा, हे मातः! अपने इस तीसरे अण्डेको परिपक्व न होनेतक विदीर्ण न करना। इसके उपरान्त इससे जो वीर उत्पन्न होंगे, वही तुम्हारा दासीत्व भी मोचन करेंगे। इसतरह कहकर अरुण आकाश मार्गसे उड़कर जहां विश्वेश्वरके प्रसादसे, पङ्गु व्यक्तिके भी जङ्गम चरण होते हैं, उस आनन्दकाननमें उपस्थित हुए। मुनिवर! इन विनताके दासीत्वका कारण तुमने सुना ; अब अरुणादित्यका उपाख्यान कहता हूं, सुनो। अण्डेसे उत्पन्न वैनतेय उरुहीन होनेकी वजह "अनरु" और जन्मते ही उन्होंने क्रोधसे मुख रक्तवर्ण किया था, इसलिये, "अरुण" नामसे अभिहित हो काशीमें सूर्य्यकी उपासना की थी और सूर्य्यने भी भक्तकी नामकी तरह अरुणादित्य नामसे विख्यात हो उनका अभीष्ट पूर्ण किया था। सूर्य्यने कहा, हे वैनतेय अनूरो! तुम आजसे त्रिलोकके हितार्थ मेरे रथपर अवस्थान करो और इस काशीधाममें विश्वेश्वरकी उत्तर ओर तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तिकी जो आराधना करेंगे, उन्हें कोई भय नहीं रहेगा ; इस मूर्त्तिमें मैं अरुणादित्य नामसे अवस्थित हुआ। जो इस नामसे मेरी पूजा करेंगे, वह कभी किसी तरहके दुःख दारिद्र पाप या किसी तरहकी पीड़ादि उपसर्गसे आक्रान्त नहीं होंगे। अरुणादित्यके सेवकको कोई शोकानल भी दग्ध नहीं कर सकती। यह सब कहकर दिवाकर अरुणको अपने रथपर लेकर चले। तबसे आज भी प्रभातमें सूर्य्यरथपर अरुण उदय होते हैं। जो नित्य प्रभातमें उठकर सूर्य्यको और अरुणको प्रणाम करते हैं, उनको कोई दुःख नहीं रहता या जिनके कर्णकुहरमें अरुणादित्यका माहात्म्यवाद प्रवेश करे, वह किसी तरहको दुष्कृतिके भागी नहीं होते। कार्त्तिकने कहा, हे मुनिवर! इसके उपरान्त वृद्धादित्यकी महिमा वर्णन करता हूं ; इसके सुननेसे, जीवकी बहुजन्मसञ्चित पापराशि विनष्ट होती है। पुराकालमें

इस काशीमें वृद्धहारीत नामक एक तपस्वीने निजतपःसिद्धिके लिये विश्वालाक्षीके दक्षिण भागमें शुभप्रद शुभलक्षणाक्रान्त एक सूर्य्यविग्रह प्रतिष्ठाकर अति भक्तिके साथ सूर्य्यकी उपासना की थी। उनका तप देखकर सन्तुष्ट दिवाकरने उपस्थित हो कहा, हे तपोधन! मैं तुम्हारा अभीष्टदेव हूं, वरदानके लिये आया हूं, अविलम्ब अभिलषित प्रार्थना करो। तब तपस्वीने कहा, हे प्रभो! यदि मैं आपका अनुग्राह्य हुआ हूं, तो मुझमें और तपस्या करनेका सामर्थ्य नहीं है, कारण मैं वृद्ध हुआ हूं, सुतरां ऐसा वर दीजिये जिससे मैं फिर युवा हो सकूं; ऐसा होनेसे तपस्यामें विशिष्ट मनोनिवेश कर सकूंगा। तपस्या ही परम धर्म्म है, तपस्या ही परम काम है, तपस्या ही परम मुक्ति है; तपस्याके सिवा और किसीसे कुछ भी ऐश्वर्य्यसम्पत् नहीं मिलता। ध्रुवादि महात्मागण तपःप्रभावसे ही महा ऐश्वर्य्य पा सके हैं; सुतरां आपके अनुग्रहसे मैं युवा हो दोनो लोकको हितकर तपस्याका अनुष्ठान करनेकी इच्छा करता हूं। जिस जरासे जीवगण सदा विरक्त रहते हैं, उसे प्रश्रय देना कर्त्तव्य नहीं। अपनी सहधर्म्मिणी भी प्रियतम पतिके जराजीर्ण होनेपर उपेक्षा करती है। अधिक दुःखदायिनी जराकी अपेक्षा जीवका मरना श्रेयस्कर है; कारण मृत्यु यन्त्रणाको जीव अल्पक्षणमात्र भोग करता है, किन्तु जरा प्रतिक्षणमें ही यातना देती है। जितेन्द्रिय मानवगण दीर्घकालतक तपस्या करनेके लिये दीर्घ आयु, दान करनेके कारण अर्थ, पुत्रके लिये पत्नी और मुक्तिके लिये उत्तम बुद्धिका अभिलाष करते हैं। इनकी ऐसी बात सुनकर सूर्य्यने उनकी वृद्धता दूरकर उन्हें युवा बनाया। इसतरह वृद्धहारीतने काशीधाममें सूर्य्यके प्रसादसे यौवन पा कठोर तपस्या की थी। वृद्धहारीतका वार्द्धक्य हरण किया था इसलिये सूर्य्यदेव भी वृद्धादित्य नामसे अभिहित हुए और इस नामसे भक्त द्वारा उपासित हो वह उनकी जरा दुर्गति और पीड़ा दूरकर सिद्धिप्रदान करते हैं। जो काशीमें वृद्धादित्यकी वन्दना करते हैं, उनकी दुर्गति दूर होती है। स्कन्दने कहा, हे मुनिवर! इसके उपरान्त केशवादित्यका वृत्तान्त सुनो। केशवको पाकर सूर्य्यको जो ज्ञान लाभ हुआ था, वह भी कहता हूं। एक दिन सूर्य्यने आकाशचारी हो देखा, कि भगवान आदिकेशव भक्तिभावसे शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। उनको देखकर विस्मित हो उसका कारण जाननेका कौतूहल होनेसे वह भूपृष्ठमें आकर निःशब्द और निस्तब्धभावसे विष्णुके पास अवसरकी प्रतीक्षा करते खड़े रहे। हरिकी पूजा साङ्ग होनेपर सूर्य्यने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। भगवान् विष्णुने भी अति आदरसे सूर्य्यका

स्वागत प्रश्नादि पूछ उन्हें निज आसनपर बिठाया। सूर्य्यने भी अवसर पा फिर प्रणामकर कहा, हे विश्वम्भर! हे जगदीश! आपसे ही यह चराचर उद्भूत हो आप हीसे प्रकाशित है और आपमें ही विलीन होगा। हे जगदाधार! आप विश्वपालक होनेकी वजह जगत्के पूजनीय हैं, फिर आप किसकी अर्च्चना करते हैं? यह देख विस्मय रसमें आप्लुत हो आपके पास आया हूं। हे देव! हृषीकेश! संसारके तापदूरक होकर भी आप किसकी पूजा करते हैं? भगवान्, सूर्य्यकी बात सुनकर सङ्केत द्वारा ऐसी बात करनेके लिये निषेधकर कहने लगे। श्रीविष्णुने कहा, जो नीलकण्ठ, सतीनाथ और सब कारणके भी कारणरूपी हैं, वह महादेव ही एकमात्र पूजनीय हैं। जो शिवके सिवा और देवताकी अर्च्चना करते हैं, वह मूढ़ नयन होनेपर भी हैं। मनुष्य एकमात्र जन्मजरामृत्युहारी मृत्युञ्जयकी पूजा करेंगे। राजा श्वेतकेतुने मृत्युञ्जयकी उपासनाकर मृत्युको पराजित किया था। कालके भी कालरूपी इन महाकालकी आराधना करके ही भृङ्गी कालजित हुए थे। शिलादतनयोंने मृत्युञ्जयके भक्त होकर ही मृत्युकी उपेक्षा की थी। जिनके मात्र एक बाणके आघातसे महाबली त्रिपुर पराजित हुआ था, उन भूतनाथकी जो अर्च्चना करते, वह मानो सबकी पूजा करते हैं। कारणके भी कारणरूपी जगदीश्वर त्रिनयनकी उपासनासे ही परम पुरुषार्थ मिलता है। हे दिवाकर! जिनके आंख मूंदनेपर जगत् प्रलयप्राप्त होता है और जिनके नयन खोलनेपर जगत् प्रकाशित होता है, वह कामनाशन भगवान् उमापति किसके आराध्य नहीं हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं, कि शिवलिङ्गकी पूजा करनेसे पुरुषका पुरुषार्थचतुष्टय सिद्ध होता है। इस जगह शिवलिङ्गकी पूजा करनेसे बहुजन्मार्ज्जित पापसे मुक्ति मिलती है। हे सूर्य्य! यहां शिवलिङ्गकी उपासना करनेसे, मानवको पुत्र, कलत्र, क्षेत्र, स्वर्ग और मोक्ष प्रभृति सब फल मिलते हैं। इसीसे समझो, कि मैं शिवकी आराधना करके ही त्रिजगदीश्वर हुआ हूं। शिवलिङ्गकी पूजा ही परम योग, परम ज्ञान और परम तपस्या है। यहां जिसके द्वारा एकबार भी महादेव पूजित होते हैं, इस दुःखमय संसारमें उन्हें कोई दुःख नहीं रहता। हे सूर्य्य! जो सर्व्वत्यागी ही शिवका आश्रय ग्रहण करते हैं, उनके शरीरमें किसी समय पाप प्रवेश कर नहीं सकता। महादेवके हृदयमें जिनका भवबन्धन दूर करनेकी वासना होती है, उनकी ही शिवपूजामें बुद्धि होती है, शिवलिङ्गकी पूजाके सिवा जीवके लिये दूसरा कोई पुण्यकर्म्म नहीं है। लिङ्गका स्नानीय

सलिल मस्तकपर धारण करनेसे, मनुष्य यावतीय तीर्थाभिषेकके फलभागी होते हैं। हे दिवाकर! तुम्हें भी यही उपदेश देता हूं, कि तुम शिवलिङ्गकी आराधना करो; इससे परम तेजस्वी और सुन्दर हो सकोगे। विष्णुकी बात सुनकर सूर्य्य महादेवका स्फटिकलिङ्ग प्रतिष्ठितकर उसी अवधिसे पूजा करते आते हैं और आदित्यकेशवको गुरु बना आज भी उनके उत्तर अवस्थित हैं। इस कारण भक्ताज्ञाननाशी प्रभु सूर्य्य तबसे केशवादित्य नामसे अभिहित हो भक्तकी आराधनासे सन्तोष पाते और उन्हें पूर्णकाम किया करते हैं। जिनके प्रभावसे निर्व्वाण प्राप्त होता है, काशीमें उन केशवादित्यकी आराधनाकर मानव तत्त्वज्ञानलाभ करते हैं। मानव काशीधामके पादोदक तीर्थमें अभिषेकादि याज्ञदुदककार्य्य समापनकर केशवादित्यका दर्शन करनेसे आजन्म सञ्चित पापबन्धनसे विमुक्त होते हैं। हे मुनिवर! यदि रविवारको रथसप्तमी हो, तो उस दिन प्रभातमें मौनी हो आदिकेशवके निकट पादोदकतीर्थमें स्नात व्यक्ति द्वारा पूजित होनेपर, केशवादित्य उनका सप्तजन्मार्ज्जित पापराशि दूर करते हैं। "सात जन्ममें मैंने आजन्म जो पापसञ्चय किया था, मेरी सप्तमीका आधार वह सब पाप, रोग और शोक दूर करें।" जो श्रद्धापूत मानससे केशवादित्यकी महिमा सुनते हैं, उनके हृदयसे पाप दूर होता और शिवभक्ति अवस्थान करती है।

कार्त्तिकेयने कहा, हे मुनिवर! इसके उपरान्त काशीमें हरिकेशवनमें अवस्थित विमलादित्यका सुन्दर इतिहास कहता हूं, सुनो। पूर्व्वकालमें पर्व्वतप्रदेशमें विमल नामक एक क्षत्रिय रहते थे। उनकी बुद्धि धर्मविषयिणी होनेपर भी जन्मान्तरीण पापके फलसे वह कुष्ठरोगी हुए थे। फिर वह आत्मीयस्वजन विषयवैभव परित्यागकर काशीमें भी सूर्य्यकी आराधना करने लगे। वह सदा करवीर, जपा, बन्धुक, किंशुक, रक्तकमल, अशोक प्रभृति पुष्प और चम्पकादि पुष्पकी विचित्र माला और जिनके सौरभसे दिगन्तर आमोदित होता है, वह देवविमोहन कुङ्कुम, रक्तचन्दन, धूप, कर्पूरदीप और घृतपायससंयुक्त विविध नैवेद्य और अर्घ्यदान, स्तुतिप्रणति प्रभृति द्वारा सूर्य्योपासना करने लगे। उनकी उपासनासे प्रसन्न हो सूर्य्यने आकर कहा, हे विमलचेतः! विमल! मैं प्रसन्न होकर कहता हूं, कि तुम कुष्ठ रोगसे मुक्त हो। अपने दूसरे अभिलाषकी भी प्रार्थना करो। सूर्य्यकी बात सुनकर विमलकी देह रोमाञ्चित हुई और वह दण्डवत प्रणामकर अति धीर हो कहने लगे, हे अमेयात्मन्! अन्धकारके नाशक! आप विश्वेश्वरके नयन हैं। यदि आप मेरे प्रति प्रसन्न हो मुझे वर देनेके लिये आये हैं, आशीर्व्वाद दीजिये, कि आपके भक्तगणके वंशमें कोई कभी

कुष्ठरोगी, दरिद्र या सन्तापी न हों। सूर्य्यने कहा, हे विचक्षण! तुम्हारा अभिलाष पूर्ण होगा इस समय तुम्हें और भी एक वर देता हूं सुनो। हे मतिमन्! इस काशी-धाममें तुमने जिस मूर्त्तिसे मेरी पूजा की है, मैं उस मूर्त्तिमें तुम्हारे ही नामसे विमला-दित्यनामा हो सदा अधिष्ठित रह भक्तगणों की मनोवाञ्छा पूर्ण करता हुआ सब तरह-की व्याधि और पापभय दूर करूंगा। यह कहकर सूर्य्य वहीं अन्तर्हित हुए। विमल भी नीरोग होकर हो अपने धाम आये। ऐसे आविर्भूत शुभदायी भगवान् विमला-दित्यके दर्शन मात्रसे ही जीवका कुष्ठरोग दूर होता है। जो भक्तिभावसे इस उपा-ख्यानको सुनते हैं, उनके शरीरकी पाप-राशि और मानसिक मलचय विदूरित होता और अन्तर विशुद्ध होता है। कार्त्तिके-यने कहा,—हे मुने! इस काशीमें विश्वे-श्वरके दक्षिण भागमें गङ्गादित्यनामा दूसरे एक आदित्यदेव विराज रहे हैं, इनके दर्शनसे मानवकी चित्तशुद्धि होती है। जिस समय भगीरथ गङ्गाको ले आये, तबसे दिवाकरने गङ्गाका स्तव करनेके कारण वहां अवस्थान किया। आज भी उसी भावसे गङ्गाकी सामने रह गङ्गाभक्तोंके वर प्रद हो रातदिन गङ्गाका स्तव करते हैं। यहां गङ्गादित्यकी उपासना करनेसे जीवको कोई दुर्गति या रोग भोगना नहीं पड़ता। कार्त्तिकेयने कहा, हे महात्मन्! इसकी उप-रान्त जिसके सुननेसे जीवको यमालय जाना नहीं पड़ता, उन यमादित्यका विषय वर्णन करता हूं। वह यमादित्य, यमे-श्वरके पश्चिम और वीरेश्वरके दक्षिण अवस्थान करते हैं। इनका दर्शन करनेसे फिर यमालयमें नहीं जाना पड़ता। मङ्ग-लवारकी चतुर्द्दशी तिथिको यमतीर्थमें स्नान-कर यमेश्वरका दर्शन करनेसे उसी क्षण जीवका सब पाप दूर होता है। पूर्व्वमें वैवस्वत यमने यमतीर्थमें स्नात हो अपने हाथसे इन यमेश्वरनामक लिङ्ग और यमा-दित्य नामक सूर्य्यमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। यह आदित्य यमस्थापित होनेकी वजह ही यमादित्य नामसे अभिहित हुए। इनकी सेवासे भक्तोंकी यमयातना दूर होती और इन दोका दर्शन करनेसे यमलोकदर्शन करना नहीं पड़ता। मङ्गलवार भरणी-नक्षत्रयुक्त चतुर्द्दशीमें पितृगण इस काशीके यमतीर्थमें स्नात, अवस्तन जीवित पुरुषोंके हाथसे तिलतर्पण और गयापिण्ड-दान तुल्य इस यमतीर्थमें भूरिदक्षिणा श्राद्धकी प्रार्थना करते हैं। जो व्यक्ति यमतीर्थमें स्नानकर यमेश्वरका दर्शनकर यमादित्यको नमस्कार करते हैं, उनका पितृऋण मोचन होता है। कार्त्तिकने कहा, हे मुनिवर! यह तुमसे द्वादश आदित्यका विवरण कहा, इसके सुननेसे जीवको नरकमें जाना नहीं पड़ता। हे अगस्त्य! इस काशीमें वृद्ध-भक्तगणोंने इसके अतिरिक्त गुह्यकार्क प्रभृति

अनेक आदित्यमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की है। यह द्वादशादित्यज्ञापक अध्याय सबके सुनने या सुनानेसे, मनुष्यकी कभी कोई दुर्गति नहीं होती।

एकपञ्चाश अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाश अध्याय।

दशाश्वमेध वर्णन।

कार्त्तिकेयने कहा, हे मुनिवर! इधर मन्दरवासी भगवान् महादेव सूर्य्यकी विश्व-विमोहिनी काशीसे लौटनेमें विलम्ब देख सोचने लगे; योगिनीगण आजतक नहीं लौटीं; इसके उपरान्त सूर्य्यको भेजा, वह भी नहीं आये। काशी मेरा मानस जैसा चञ्चल करती है, इसमें आश्चर्य नहीं, कि अन्यान्य देवगणका चित्त भी ऐसा ही अस्थिर करेगी। मैंने विश्वजेता कामको नयनानलसे दग्ध किया था, किन्तु काशी-दर्शनवासना मुझे दग्ध करती है। इसकी अपेक्षा आश्चर्यकर और क्या है? अब काशीसंवाद जाननेके लिये चतुर्मुखको ही भेजूं; ब्रह्माके सिवा और कोई भी काशीका तत्त्व जान न सकेगा। यह स्थिर करके महादेव चतुराननको बुला बहुत सम्मानसे उन्हें अपने आसनपर बिठा कहने लगे, हे कमलयोने! बहुत दिन हुए कुछ योगिनीगणको और इसके उपरान्त सूर्य्यको भी काशीमें भेजा; किन्तु उन लोगोंका कोई संवाद ही न मिला। हे लोकनाथ! सुनयना ललनाको देखनेसे सामान्य व्यक्तिका मानस जैसा उत्कण्ठित होता है, वैसा ही काशीविरहसे मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। जैसे क्षुद्र सरोवरमें निर्म्मल और अगाध सलिल रहनेपर भी वह क्षुब्धीरके प्रीतिकर नहीं है, उसी तरह इस मन्दराचलमें सुरम्य कन्दरादि होनेपर भी मेरा चित्त सुखी नहीं है। पूर्व्वमें कालकूट पान करके भी वैसा कष्ट नहीं पाया, जैसी असह्य यातना आज काशीविरहसे पा रहा हूं। अधिक क्या, मैं इन शीतांशुको मस्तकपर धर इनके सुधामय किरणसम्पर्कसे भी काशी विरहानल निर्व्वाण कर नहीं सकता। हे मतिमन्! हे जगन्मान्य! हे विधातः! तुम मेरे हिताकांक्षी हो शीघ्र काशीमें जाओ! मेरे काशी परित्यागका कारण तुमसे छिपा नहीं है। जो काशीमहिमा-भिज्ञ हैं, उनको बातका तो कोई प्रयोजन ही नहीं है; मूर्खोंका मन भी काशी छोड़ना नहीं चाहता। हे विधे! मैं मायाके साहाय्यसे इसी मुहूर्त्त वहां जा सकता हूं, किन्तु धर्म्ममय राजा दिवो-दासको उल्लङ्घन करना पड़ेगा, इसलिये ही वहां नहीं जाता हूं। हे विधे! जब तुम सब विधिके मूल हो, तब तुम्हें यह उपदेश करना, कि वहां जाकर तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है, निरर्थक मात्र

है। तुम निर्व्विघ्न काशीमें जाओ, काशीगमन तुम्हें शुभफल प्रदान करे। इस तरह महादेव द्वारा आदिष्ट हो ब्रह्मा सानन्द आनन्दधाममें उपस्थित हुए। विधाताने अतिशीघ्र काशीमें आकर अपनेको कृतार्थ समझ विचार किया, आज मेरा हंसनाम सार्थक हुआ; कारण काशीमें आनेके समय पद पदपर विघ्न आकर व्याघात करते हैं। आज मेरे नयन काशीमें दृशि धातुका अर्थ पाकर सार्थक हुए, इसलिये, कि जहां सदा पुण्यतोया भगवती गङ्गा प्रवाहित हैं, आज नयनने उस आनन्दधामके दर्शन किये। नन्दनसम्भूत कडुवेतीते फलादि काशीमें आकर आनन्दमय होते हैं, किन्तु महेश्वर अविरत इस आनन्दभूमि काशीमें रहकर ही जीवगणको आमोहित करते हैं। जिनके चरणयुगल इस शिवपुरीमें विचरण करते हैं, सुकृती मानवके वह चरणद्वय ही विश्वविचरण करनेमें समर्थ हैं। जो कान एकबार काशीनाम सुनते हैं, वह बहुश्रुत कर्ण ही जगत्में सुनना जानते हैं। जिस चित्तमें काशीचिन्ता हो, इस संसारमें मनीषिगणके उसी चित्तसे ही सब मनन होता है। यह शिवधाम वाराणसी जिस बुद्धिका विषय होती है, वह बुद्धि ही इस जगत्में सब पदार्थ निश्चय करना जानती है। पवमानीत तथा धान्यादि भी काशीस्थ होनेपर प्रशंसनीय होते हैं, किन्तु काशीदर्शनविहीन चेतन मानवगण भी घृणाके पात्र हैं। परार्द्धद्वयजीवी मैं आज पूर्णकाम हुआ, आयु भी सफल हुई; क्योंकि आयु है इसलिये ही इस दुर्लभ काशीको प्राप्त हुआ हूं। मैंने असामान्य धर्म्मबल और भाग्यबलसे ही इस चिराभिलषित काशीको पाया है। आज मेरे शिवभक्तिरूप सलिलसिक्त तपोवृक्षसे यह सुवृहत् अभीष्टफल उत्पन्न हुआ। मैं यद्यपि सृष्टिकर्त्ता हूं, किन्तु यह शिवसृष्टि काशीका सृष्टिकौशल देखकर विस्मित हुआ हूं। काशीदर्शनसे आनन्दित हो ब्रह्माने वृद्धब्राह्मणका वेश धारणकर दिवोदासके पास जा सजल साक्षत हस्तसे उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर राजाके प्रणामकर अपने हाथसे आसन देनेपर वह उसपर बैठे। राजा दिवोदासके अभ्युत्थान और आसनादि द्वारा ब्राह्मणका सत्कारकर आगमनका कारण पूछनेपर द्विजरूपधारी विधाता कहने लगे। ब्राह्मणने कहा, हे राजन्! बहुत दिनोंसे मैं तुम्हारे राज्यमें वास करता हूं। हे अरातिसूदन! तुम मुझे नहीं जानते, अब भी मैं तुमसे अविशेष ज्ञात हूं। मैंने कितने ही राजाओंको देखा है, जिन्होंने युद्धमें जय पाई है, जिनके द्वारा सदक्षिण यज्ञचय अनुष्ठित हुए हैं; जो सब जितेन्द्रिय, जितषड्वर्ग, सुशील, सात्त्विक, विद्वान्, राजनीतिज्ञ, दया और दाक्षिण्यगुणके आधार, सत्यव्रतपरायण, सहिष्णुतामें पृथिवीतुल्य,

गाम्भीर्य्यमें सागर सदृश, शूर, सौम्य, जितक्रोधवेश और परम सुन्दर थे। हे महाराज! तुम्हारी तरह कोई राजा भी प्रजागणको आत्मपरिवारकी तरह नहीं समझते थे। ब्राह्मणोंपर देवताबुद्धि और सदा तपस्याका अनुष्ठान तुम्हारे सिवा किसी राजामें नहीं देखा। हे दिवोदास! तुम्हीं धन्य हो, मान्य और अशेषगुणाधार हो; इसलिये तुम्हारे शासनमें देवगण भी अपथसे पदार्पण नहीं करते। हे राजन्! मैं निस्पृह ब्राह्मण हूं, किसी स्वार्थसे तुम्हारा स्तव नहीं करता, तुम्हारी साधुगीत गुणराशि ही मुझसे स्तव कराती है। इस समय यह सब बातें निष्प्रयोजन हैं, अब अपने आनेका कारण कहता हूं, सुनो। हे भूपाल! मुझे एक यज्ञ करनेकी वासना हुई है, किन्तु वह वासना सम्पूर्णरूपसे तुम्हारे साहाय्यकी ही अपेक्षा करती है। हे राजन्! यह जगत् तुम्हारे अवस्थानसे ही सराजक और सुस्थ हुआ है। अधिक क्या, मैं क्षुद्रप्रजा होकर भी तुम्हारे राज्यमें न्यायानुसार धनार्जनकर सुखसे कालयापन करता हूं। तुम्हारी यह नगरी काशी, पृथिवीके सब स्थानोंमें श्रेष्ठ है; कारण, यहां जो कुछ कर्म्म अनुष्ठित होता है, कितने ही युगतक भी उसका फल क्षयको प्राप्त नहीं होता। काशीमें मानवगण सुनीतिरूप सन्मार्गसे विचरणकर न्यायार्जित धन सत्पात्रको प्रतिपादन न करनेसे, कभी चरम समयमें शुभफल पा नहीं सकते। हे महाराज! तुम्हारी नगरी इस काशीकी महिमासे एकमात्र ज्ञानदाता सतीनाथ ही अवगत हैं। हे महाराज! मैं समझता हूं, कि इस संसारमें तुम्हारे जैसे अन्य पुरुष नहीं हैं; कारण, तुम जन्मजन्मके पुण्यप्रभावसे इस जन्ममें द्वितीय काशीनाथकी तरह इस काशीके प्रतिपालक हुए हो। त्रिजगन्मान्य इस पुरीको आर्य्यगण वेदत्रयका सार गिनते हैं, और वह लोग संसारकी सारभूमि यह काशी त्रिवर्गसे भी उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करती है, कहकर निर्देश करते हैं। काशीस्थ एक व्यक्तिका प्रतिपालन करनेसे, त्रिभुवनरक्षाका फल मिलता है। तुम अकेले समग्र काशीका प्रतिपालन करते हो, यह सिवा विश्वनाथकी दयाके और कुछ नहीं है। हे महाराज! मैं और भी एक हितकर बात कहता हूं, यदि वह तुम्हारे अभिमत हो, तो अवश्य उसका अनुष्ठान करूंगा। तुम्हारा परम पुरुषार्थ समझकर किसी तरहसे सर्व्वभूतेश्वर महादेवको सन्तुष्ट करूंगा। उन जगदीश्वरको असाधारण समझना; कारण उन्होंने क्रीड़ोपकरणके लिये इन ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य्य, चन्द्र, इन्द्र प्रभृति देवगणका सृजन किया है, हे महाराज शुभाकाङ्क्षी हो समय समयमें उन्हें सविषय शिक्षा देना ब्राह्मणोंको उचित

समझकर मैंने आपसे यह सब बातें कहीं, अथवा मेरे जैसे सामान्य व्यक्तिको इन सब विषयका विचार करनेसे कोई फल नहीं है। यह कहकर ब्राह्मणके चुप होनेपर राजा दिवोदासने कहा, हे द्विजवर! आपने जो कुछ कहा, उसे मैंने हृदयङ्गम किया। आप यह समझिये, कि मैं आपका दास हूं। आप यज्ञ करनेकी इच्छुक हुए हैं, उसमें जो जो प्रयोजन हो, सब मेरे कोषागारसे ले जाइये। मेरे सप्ताङ्गराज्यमें जो कुछ है, उन सबके आप ही प्रभु हैं। आप यज्ञारम्भ कीजिये और उसकी प्रयोजनीय वस्तुको उपस्थित ही समझिये। हे द्विज! मैं निज स्वार्थानुसन्धान न करके ही इस साम्राज्यका पालन करता हूं, मैं पुत्र, स्त्री और स्वदेह द्वारा सदा पराधिको उपकृत करनेके लिये ही चेष्टा करता हूं। मनस्विगण नृपतोंके लिये यज्ञानुष्ठान और तीर्थसेवादिसे प्रजापालनको ही परमधर्म कहकर निर्णय करते हैं। प्रजागणका सन्तापानल राजाके पक्षमें वज्राग्निसे भी विषम कारण है, वज्राग्नि दो या तीन मनुष्योंको दग्धकर शान्त होती है, किन्तु प्रजासन्तापानल बिना राज्य कुल और शरीरको दग्ध किये निवृत्त नहीं होता। हे द्विजवर। मेरी अवभृथ स्नानकी इच्छा होनेपर ब्राह्मणके पादोदकसे ही स्नान करता हूं, मैं होम करनेका अभिलाषी होकर विप्रमुखमें ही तर्पण करता हूं और इस हवनको ही यज्ञकार्य्यसे श्रेष्ठ समझता हूं। बहुत दिनोंसे मेरा अभिलाष था, कि कोई याचक आकर मेरा प्राणपर्य्यन्त प्रार्थना करे तब भी विमुख न हूंगा, आज सामान्य वस्तुके याचक होकर भी आपके मेरे घरमें पदार्पण करनेसे, मेरा वह मनोरथ पूर्ण हुआ है। हे द्विजवर! आप भूरिदक्षिण याग आरम्भ करिये और समझिये, कि सब विषयमें ही मेरा साहाय्य पाया है। मतिमान् राजा दिवोदासकी बात सुनकर विधाता आनन्दलाभकर यज्ञीय द्रव्यसमूह आहरण करने लगे। उस समय दिवोदासके साहाय्यसे ब्रह्मा द्वारा काशीमें दश अश्वमेध यज्ञ अनुष्ठित हुए थे। उनके यज्ञीय होमकी धूमराशिने अन्तरीक्षमें उड़कर नभस्तलको नीलवर्ण किया था, आज भी उसी कारणसे आकाश नीलवर्ण है। वाराणसीमें जहां ब्रह्माका अश्वमेध यज्ञ हुआ था, आज भी वह स्थान परम पवित्र दशाश्वमेध तीर्थके नामसे अभिहित है। हे मुने! अगस्त्य! पूर्व्वमें इस स्थानका नाम "रुद्रसरोवर" था, ब्रह्माकी यज्ञावधिसे दशाश्वमेध नाम हुआ है। इसके उपरान्त भगीरथानीता भगवती गङ्गाने आकर इस स्थानको पवित्र किया है। ब्रह्मा भी यज्ञके अन्तमें वहां दशाश्वमेध नामक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठाकर वास करने लगे। तबसे वह काशी छोड़कर कहीं नहीं गये! ब्रह्मा, दिवो-

हासका कोई दोष न देखकर कैसे शिवके पास उपस्थित होंगी, यह सोचकर और काशीकी महिमा भी उनसे अविदित नहीं थी, सुतरां वह विश्वेश्वरका ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वर नामक और एक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठाकर काशीमें ही रहने लगे। ब्रह्मा सोचने लगे, इस विश्वनाथकी ही मूर्त्तान्तर काशीका आश्रय करनेसे, विश्वनाथ कभी कोप न कर सकेंगे। जिस काशीमें आनेसे जीवका बहुजन्मसञ्चित कर्म्मसूत्र छिन्न होता है, किसको उस काशीके त्यागनेकी इच्छा होती है? विश्वसन्तापनाशक विश्वनाथकी देह भी काशी विरहानलसे सन्तप्त होगी, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सर्व्वपापनाशिनी काशी प्राप्त होकर भी जिनसे परित्यक्ता होती हैं, लोग उन्हें नृ-पशु कहते हैं। जिन्हें संसारबन्धन छेदनकर मोक्षधाम पानेकी वासना हो, उनके भी भाग्यमें यदि काशीलाभ हो, तो फिर कभी परित्याग करना उचित नहीं। जो मूर्ख काशी छोड़कर अन्यत्र जाते हैं, वह चतुर्व्वर्ग फल पानेपर भी च्युत होते हैं। जगत्में ऐसे कौन मूढ़ हैं, जो इस पापहारिणी, पुण्यदायिनी और मोक्षसुखविधात्री काशीको पाकर भी परित्याग करते हैं? क्षणार्द्धकाल भी काशीमें रहनेसे जीवको जो सुख होता है, सत्यलोक या विष्णुलोकमें वास करनेपर भी वैसा सुख नहीं मिलता। हे मुने! विधाता, काशीकी यह सब गुणावली पर्य्यालोचनाकर फिर मन्दराचलमें नहीं गये। कार्त्तिकेयने कहा, हे मैत्रावरुणि! अब काशीस्थ सब तीर्थोंका सारभूत दशाश्वमेधकी महिमा वर्णन करता हूं। यहां स्नान, जप, दान होम, वेदपाठ, देवपूजा, सन्ध्यावन्दना, तर्पण और श्राद्धादि जो कुछ सत्कर्म्मका अनुष्ठान किया जाय, सभीसे अक्षय फल मिलता है दशाश्वमेधमें स्नानकर दशाश्वमेधेश्वरका दर्शन करनेसे जीवका सब पाप विनष्ट होता है। ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षीय प्रतिपद् तिथिको यहां स्नान करनेसे आजन्मसञ्चित पाप दूर होता है। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यहां स्नान करनेसे जन्मद्वयार्ज्जित पापसे मुक्ति मिलती है। इसतरह उसी मासके उसी पक्षकी दशमी पर्य्यन्त यथाक्रमसे स्नान करनेसे, तिथिसंख्या परिमित जन्मसञ्चित पाप विनष्ट होता है। दशजन्मार्ज्जित पापनाशिनी दशहरा तिथिमें, दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे फिर उन्हें यमयातना भोगनी नहीं पड़ती और उस दिन दशाश्वमेधेश्वरका दर्शन भी दशजन्मकी पापराशि दूर करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। दशहराके दिन दशाश्वमेधमें स्नात व्यक्ति कर्त्तृक यदि भगवान् दशाश्वमेधेश्वर विलोकित हों, तो वह प्रसन्न होकर उनका भवबन्धन मोचन करते हैं। ज्येष्ठमासका